ललितविक्रम

(ऐतिहासिक नाटक)

वृन्दावनलाल वर्मा

मयूर प्रकाशन झाँसी

प्रकाशक —
सत्यदेव वर्मा,
बी ए एल-एल बी
मयूर प्रकाशन, झाँसी.

पंचमावृत्ति १९५६
मूल्य—१ रुपया ५७ नये पैसे

मुद्रक —
रामसेवक खड्ग
स्वाधीन प्रेस, झाँसी

नाटक के पात्र

रोमक—अयोध्या का राजा

ललितविक्रम—रोमक का पुत्र (अयोध्या का राजकुमार)

धौम्य—नैमिषारण्य के विख्यात आश्रमवासी ऋषि

आरुणि—
वेद— } धौम्य के शिष्य
कुल्लक—

मेघ—उपाध्याय, धनुर्वेद का एक आचार्य।

नील—एक धनाढ्य व्यवसायी पणि (फिनीशियन)

कपिञ्जल—एक शूद्र जो तपस्या करके ऋषिपद पर पहुच गया।

सोम—रोमक का पुरोहित, अयोध्या नगरी की सभा का सभापति।

सुवाहु—एक ग्रामीण।

दीर्घवाहु—एक लाख निवर्तन भूमि का स्वामी, एक महाशाल।

ममता—रोमक की रानी, ललितविक्रम की माता, ईशान, कृषक,
वणिक, दण्डिक, अमात्य और जनपद के अन्य व्यक्ति।
ममता की परिचारिकायें और अन्य स्त्रिया।

समय—उत्तर वैदिक काल।

दो शब्द

हमारा भविष्य जैसे कल्पना के परे दूर तक फैला हुआ है, हमारा अतीत भी उसी प्रकार स्मृति के पार तक विस्तृत है। अतीत के जिस अश तक प्रमाण की किरणें पहुँच सकती हैं उसे हम इतिहास की सज्ञा देते हैं जो जीवन के स्पन्दन से रहित इतिवृत्त मात्र हैं। जो हमारे तर्क की सीमा के पार घटित हो चुका है वह पुराण की सीमा मे आवद्ध होकर/जीवन की ऐसी गाथा बन जाता है जिसमे इतिवृत्त का सूत्र खोजना कठिन है। हर युग की अनुश्रुति पुराण पर कल्पना का नया रङ्ग चढ़ा देती है और इस प्रकार हम तक आते-आते यह जीवन गाथा सत्य, कल्पना, सिद्धान्त, आदर्श, नीति आदि का सघात बन जाती है।

इतिहास को साहित्य मे प्रतिष्ठित करने के लिए घटना को जीवन से और जीवन को मनुष्य के मनोरागो से जोडना पडता है। परन्तु पुराण तो स्वय विराट साहित्य का अश है। अत उसकी बुद्धिसम्मत भागवत व्याख्या ही उसे हमारे जीवन के निकट ला सकती है। यह कार्य सहज नहीं, क्योंकि एक ओर अनुभूति की न्यूनता इस व्याख्या को नीरस सिद्धान्त बना सकती है और दूसरी ओर अनुभूति की अधिकता में वह विश्वसनीय नहीं रहती।

इतिहास के अन्यतम जीवनशिल्पी श्री वृन्दावनलाल जी ने सुन्दर अतीत की एक एक गाथा को उसके अनुरूप वातावरण मे सफलतापूर्वक उपस्थित किया है। राजा, सभा, आश्रम, गुरु, शिष्य सभी के चित्रण में नाटककार की कल्पना सन्तुलित और तथ्यनिष्ठ रही है जिससे हमें युग विशेष की परिस्थितिया विकास की दिशा और पथ की वाधायें अपरिचित नही जान पडती।

हमारी सस्कृति-प्रवाहिनी ऊपर से सम और शान्त है परन्तु उसके तल मे अनेक ज्वालामुखिया जली बुझी हैं, असख्य तूफान जागे सोये हैं। दर्शन, धर्म, साहित्य, नीति, कर्म आदि सभी क्षेत्रों में विद्रोहियों की स्थिति

रही है पर तोड़ने वाले हथौड़े को मूर्तिकार की छेनी बना लेने की विशेषता हमारी अपनी है। इसी कारण विद्रोह ने हमारी जीवन-प्रतिमा को पूर्णता दी है उसे विकलाग नही किया।

विद्रोही धौम्य ऋषि भावी पीढी के शिल्पी हैं और विद्रोही रोमक वर्तमान के। उन दोनो के विद्रोह ने तत्कालीन रुद्ध जीवन को प्रशस्त क्षितिज देकर सफलता प्राप्त की।

नाटक मे भारतीय जीवन की मूलभूत विशेषतायें सुरक्षित रह सकी हैं, इसका श्रेय नाटककार की सूक्ष्म परलक्ष्यवद्ध-दृष्टि को दिया जायगा।

'कृत सपद्यते चरन्' का महामन्त्र नाटक मे बार बार गूंजता रहता है।

महादेवी वर्मा

परिचय

वैदिक काल के एक अग पर कुछ लिखने की बहुत समय से इच्छा थी। उस काल की तरुण और सद्य ओजस्विता का स्पन्दन इतिहास और कथाओ मे स्थान स्थान पर मिलता है। विकास का क्रम अनन्त है और मानव की वह ओजस्विता भी। किसी किसी युग मे विकास-क्रम में कुछ कडिया सडी गली और निर्बल भी दिखलाई पड़ती हैं—हमारे ही देश मे नहीं, पृथ्वी के अन्य देशो मे भी। इनके होते हुये भी मानव विकास मार्ग में अग्रसर होता रहता है, भले ही समीचीन रूप से वह दिखलाई न पडे। मानव सपूर्णतया कभी अशक्त नही होता, हो नहीं सकता—यदि ऐसा हो तो सृष्टि का कार्य खण्डित हो जाय। हमें अपने समाज मे जो कुछ भी शिथिलता, अकर्मण्यता और ऊँचे आदर्श के प्रति गतिहीनता दिखलाई पडती है वह विकास के क्रम की एक कड़ी मात्र है जो चिरकाल तक नहीं रह सकती। प्रश्न जो ऐसी परिस्थिति मे उठता है वह है—कब तक यह अवस्था चलेगी ? कब तक इसे रहने दिया जावे अथवा सहन किया जावे ? जैसे ही उसके उत्तर की बात सोची जाती है, प्रश्न समस्या का रूप धारण कर लेता है। प्रगति की बात सोचते ही समस्या के सुलझाव को तत्काल गति देने के उपायों पर ध्यान केन्द्रित करना पडता है।

अनेक लोग प्रात और सन्ध्या सकल्प करते हैं कि हम सौ वर्ष जियें, सौ शरद ऋतुयें देखें, सौ वर्ष तक बोलते और कार्य करते रहे इत्यादि। परन्तु कैसे ? दूसरों का शोषण करके ? मन माने भोग-विलासो के ससर्ग मे रहते हुये ? जब तक जीवन मे सयम और रहन सहन मे अनुशासन न बर्ता जाय यह संभव

नाम कुछ और था, परन्तु मैंने उसके सुन्दर और कल्याणकारी पराक्रम के कारण उसका नाम ललितविक्रम रख दिया है। उसी के नाम पर यह नाटक है।

उत्तर वैदिक काल मे दासता का एक रूप समाज मे प्रचलित था। द्विज तक दास हो जाते थे। ऋण न चुका पाने पर स्वतन्त्रजन को दास हो जाना पड़ता था। दासोद्धार के उपाय भी थे (डाक्टर वन्दोपाध्याय की वही पुस्तक पृ० २६५-२६८) उत्तरवैदिक काल मे पणि (फिनीशियन) आर्यावर्त्त में व्यापार करते थे। उनके बड़े बड़े पोत चलते थे। वे ब्याजभोजी। सभव है आज का 'वनिया' शब्द वणिक का अपभ्रन्श न होकर पणि का ही रूपान्तर हो। दास वनाने वाले ब्याजभोजियो के प्रति आर्यों की घृणा स्वाभाविक थी। आर्यवणिक कृषि और वाणिज्य करते थे, पणियो का प्रधान व्यवसाय व्यापार और लैन-दैन था।

तत्कालीन समाज का स्थिति-चित्रण इस नाटक मे करने की चेष्टा की गई है। राजा ने अखण्ड और अनियन्त्रित सत्ताधारी का रूप प्राप्त नहीं कर पाया था। गौतम धर्म सूत्र के एकादश अध्याय मे— 'राजा सवस्येष्टो व्राह्मण वर्जम्'—ब्राह्मण को छोड़-राजा सब का अधिपति है' पीछे की बात है। उत्तरवैदिक काल मे राजा को चुनने और निकाल देने तथा फिर चुन लेने का अधिकार समिति को था—'ध्रुवाय ते समिति कल्पतामिह' तथा नाऽस्मै कल्पते (Dr. Radha Kumud mukurji's Hindu civilisation P 99 और P 160—अथर्वेद ३ · ३ · ५, ६ ८८, ५ १९) समिति का सभापति ईशान कहलाता था। चुनाव की प्रथा वही थी जो नाटक में दी गई है, राजा के पदच्युत किये जाने या एक नियत समय के लिये निकाल देने की प्रथा भी थी जिसका वर्णन नाटक मे आया है। देश के प्रति जनता में गाढा प्रेम था। उसको प्रतिध्वनि मनुस्मृति और

श्रीमद्भागवत में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की सूक्ति में आई है। ऋग्वेद में स्वराज्य का शब्द स्पष्ट रूप से आया है—यतेमहि स्वराज्ये (५ . ६६ ६) हम स्वराज्य के लिये प्रयत्नशील रहें। यह वह युग है जब साधारण आर्यजन का मन घोर विपत्तियों और कठिनाइयो के सामने न तो झुकता था और न थकता था—तरुण, तेजस्वी और सदा ओज से भरा हुआ। वे एक दूसरे से कहते थे—उद्‌बुध्यध्व समनस सखाय· (ऋ १० १०१ १)—मित्रो, एक मन के होकर चलो। उनके पुरुषार्थ पूर्ण सिद्धान्त ये थे:—

कृत मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहित (अथर्व—७ ५२·८) यदि पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में है तो विजय वायें हाथ मे वनी वनाई। परन्तु उनका पुरुषार्थ धर्म-सलग्न रहता था। अकेला, कोरा, पुरुषार्थ नही, प्रत्युत ऋतु-धर्म-से सचालित पुरुषार्थ। यही आगे चलकर महाभारत मे यतोधर्मस्ततो जय हुआ।

अरिष्टास्याम तन्वा सुवीरा (अथर्व-५ : ३) हम शरीर से निरोग हें और उदात्त वीर वनें। अदीनास्याम शरद शतम्—अदीन होकर ौ वरस जियें (यजुर्वेद-३६ २४) कुर्वन्ने वेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं ामाः (यजु-४० : २) ससार मे मनुष्य कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीने ी इच्छा करे। परन्तु उस समय का जन घमण्डी नहीं था। वह प्रार्थना रता था— उतदेव अवहित देवा उन्नयथा पुन. (ऋग्वेद १० : १३७ १) ेव, मुझ गिरे हुये को पुन ऊपर उठाओ। और, तन्मे मन. शिवसकल्प स्तु (यजु-३४ : १) मेरा मन कल्याणकारी सकल्प वाला हो। ेर्भय बने रहने के लिये ऋग्वेद की शौनक सहिता मे तो बहुत ही- ुन्दर और सीधे सूक्त हैं (शौनक सहिता २ १५) पहले अङ्क के ौथे दृश्य में इनका सार धौम्य ऋषि के मुह से कहलवाया गया

है। धौम्य ऋषि के लिये प्रसिद्ध है कि वे अकल्याणकारी परम्पराओ का उल्लघन कर डालते थे। ऋषि के ब्रह्मचर्याश्रम में शूद्र राजा की अनुमति से प्रवेश पा सकता था जैसा कि नाटक के कपिञ्जल ने कहा है। परन्तु जिस काल मे ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण के कहने पर राजा को चलना पडता था उस काल के लिये यह बात उपयुक्त नही जान पडती है। मैंने धौम्य का उपयोग इसको चरितार्थ करने के लिये किया है। महाभारत के शान्ति पर्व (६३ वें अध्याय) मे शूद्र के आश्रम प्रवेश के सम्बन्ध में राजा की अनुमति का जो आदेश है वह अथर्व की इस सूक्ति के पीछे की सामाजिक और राजनैतिक अवस्था का द्योतक है—आरोहणमाक्रमणजीवतो जीवतोऽयनम् (अथर्व ५ ३० ७)–ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है उस समय की टकसाल का सर्व स्वीकृत और सर्वमान्य सिक्का पुरुषार्थ था—इच्छन्ति देवा सुन्वन्त न स्वप्नाय स्पृहयन्ति (ऋग्वेद ८ २ १८) देवगण पुरुषार्थी को चाहते हैं, सोये हुये को नही। शतहस्त समाहर सहस्र सकिर (अथर्व ३ २४ ५)–सैकडों हाथो से इकट्ठा करो और सहस्रो से बाट दो। जो श्रम करते थे उन्ही को समिति मे जाने और बोलने का अधिकार था—न न स समिति गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत्कृषिम् (महाभारत उद्योग पर्व ३६–३१)–हमारी समिति मे वह न आवे जो स्वय खेती नही करता। मनुस्मृति मे (अध्याय ४ श्लोक ३०, १९२, १९७, १९८) में पाखण्डी द्विजों की विकट विडम्बना की गई है। यहा तक कहा गया है उनसे कोई बात न करे, उन्हें कोई पानी पीने तक को न दे! इस प्रकरण को मैंने डाक्टर भगवानदास की पुस्तिका 'शास्त्रवाद बनाम बुद्धिवाद' से लिया है जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

उस समय के प्रबुद्धजन चाहते थे कि हम सब को मित्र की आख से देखें (यजु–३६ १८) किसी की सम्पत्ति का लालच न करें (माकृध कस्यस्विधनम्—यजुर्वेद ४० १ ऋतस्य पन्था न तरन्ति

दुष्कृत. (ऋ० ९ . ७३ : ६) दुष्कर्मी मनुष्य सत्यमार्ग को पार नहीं कर सकते। नऋते श्रान्तस्य सख्यायदेवा (ऋ०—४ · ३३ : ११) देवगण तपस्वी को छोडकर दूसरे के मित्र नही हो सकते। इसका आश्रय कपिञ्जल की तपस्या के सम्बन्ध में लिया गया है। भूत्यै जागरणम भूत्यै स्वप्नम् (यजु०—३० . १९)—सजगता वैभव देती है; सोना और आलस्य में पडे रहना दरिद्रता को बुलाता है। विश्व पुष्ट ग्रामे अस्मिन्ननाहूरम् (ऋ०—१ · ११४ १) इस गाव के सब लोग स्वस्थ और नीरोग रहें। इत्यादि सूक्तिया पुरुषार्थ और शुभ सकल्पों से पूर्ण हैं। इद नम ऋषिभ्य. पूर्वजेभ्य· पूथिकृद्भ्य —(ऋ०—१० : १४. १५) पूर्वकाल के पूर्वज ऋषियों को नमस्कार है जिन्होंने अज्ञान के अँधेरे वाले जङ्गल को पार करने के लिये नये नये मार्गों का निर्माण किया। विकास की धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये जब तक इन मार्गों का सृजन होता रहा अज्ञान का अन्धकार उस युग के मानव को भटका न सका। जब कभी वह धारा रुद्ध हुई सत्पुरुषार्थ ने उस धारा को फिर से प्रवाहित किया।

उस अवरोध को दूर करने की पुन पुन आवश्यकता पडती है। ऊपर जिन सिद्धान्तों का सक्षेप में वर्णन किया गया है वे सार्वभौम और सर्वकालीन हैं और सदा सर्वदा उपयोगी हैं। जिस युग मे ये सिद्धान्त सामाजिक जीवन के प्राण थे उस युग की स्फूर्ति शक्ति, तरुणता और जीवन का क्या कहना है। प्रबुद्ध चेतना प्रबल व्यक्तित्व का सिर ऊँचा किये रहती थी। केवल शक्ति को पाशविक समझा जाता था। शक्ति और शील का समन्वय था। ऐसे युग के मानव जिस प्राजल उल्लास और सच्ची लगन के साथ ऊषा के गीत गाते होंगे उसकी अब तो कल्पना ही की जा सकती है—(ऋग्वेद—उषो येते प्रयायेषु युञ्जते मनोदानाय सूरय·)

अग्नाह तत्कण्व एषा कण्वतमोनाम गृणातिनृणाम इत्यादि प्रथम मण्डल के ४८· ४, ४९ २—४, ९२ १, ४, ६, ११३ ४, ८, ११, १६;

ओर सातवें मण्डल के ८० २ मन्त्र) । ये इतने सुन्दर है कि उस युग से आज तक के ऊषा गीतो में कोई उनकी सीधी सच्ची सुन्दर और चमत्कारपूर्ण भावना की बराबरी नही कर सका। इन गीतो का उपयोग तीसरे अक के दूसरे दृश्य मे किया गया है। पहले अक के तीसरे दृश्य में जिस गीत का उपयोग किया गया है वह भी प्राचीन सूक्तियो के आधार पर है। चेष्टा की है कि उस काल के वातावरण मे इनको प्रस्तुत किया जावे। नाटक में फसल कटाई का एक गीत उसी समय के भाव और सूक्ति से लिया गया है। आजकल भारत के प्रत्येक भाग मे लुनाई मिडाई (ये दोनो शब्द वैदिक सस्कृत से निकले हैं) के समय किसान गीत गाते हैं, परन्तु वह सीधी जीवट और आश्वस्त भावना आजकल के इन गीतो मे नहीं पाई जाती है। इसका कारण है वर्तमान-काल का किसान दीर्घकाल से पिसता चला आ रहा है। प्रकृति से तो वह अनादि काल से ही लोहा लेता चला आया था, फिर अपने सहवासी मनुष्यो की भी मार खानी पडी। इसलिये वर्तमान के लोक गीतों में वह दम नहीं मिलती जो वैदिक काल के गीतो मे पाई जाती है।

उस समय के समाज की आर्थिक दशा क्या रही होगी? प्राचीन साहित्य से इसका पता लगता है। जनसख्या कम थी, परन्तु उपलब्ध उर्वरा भूमि भी जन सख्या के अनुपात मे बहुत नही थी। विशाल वन, खेती और जनता का सहार करने वाले वन्य पशु और कीट भी बहुत थे। जो कोई जगल काटकर खेती करे भूमि उसी की। केवल 'बलि' या कर देना पडता था। उत्तर वैदिक काल में राजा का अपने पूरे रूप में विकास हो चुका था यद्यपि राज सत्ता अनियन्त्रित नही थी। सत्ता पर विद्वान ब्राह्मणो, समिति और सभा का अकुश रहता था। सभा स्थानिक और छोटी होती थी, समिति जनपद के प्रतिनिधियो की सामुयिक शक्ति का सग्रह थी। तो भी राजा को त्रपु (टीन), लोहा, ताम्बा, पत्थर इत्यादि की खानो का जो कर मिलता था वह उसका निजी कोष हो चला था। राजा खेती भी करवाता था। एक निवर्तन भूमि लगभग बीस

हाथ लम्बी और दस हाथ चौडी होती थी। जैसे जैसे उर्वरा भूमि का विस्तार बढ़ता गया। राजा के निवर्तनो की सख्या बढती चली गई। इन निवर्तनो मे निराश्रित श्रमिको से खेती करवाई जाती थी। किसी न किसी प्रकार—कभी साधारण गति से और कभी दण्डस्वरूप—राजा के निवर्तन बढते चले गये। अकालो पर अकाल जब जब पडे कृषिको ने भूमि छोडी और राजा ने ले ली। इस प्रकार राजा एक बडा भूमि-स्वामी हो गया और उसकी सत्ता का वृत्त भी प्रशस्त हो गया। विष्टि, कोर्त्री (बेगार) ली जाने लगी और श्रमिक की स्वतन्त्रता सकुचित होने लगी। व्याज की दर बढी इतनी कि साधारण जन के लिये असह्य हो गई। बहुत प्रयत्न के उपरान्त स्मृतिकारो ने उसकी सीमा बाध पाई—दुगुने से अधिक कोई न ले सके।

सूत, रथकार, कर्मार (लुहार), तन्तुवाय (बुनने वाले) नर्तक गायक, तुन्नवाय (दर्जी) इत्यादि सब श्रेणियो या सघो मे विभक्त और सगठित थे। किसी किसी का कहना है कि तुन्नवाय उस काल मे नहीं थे, क्योकि सुई और सिलाई से तत्कालीन आर्यों का परिचय न था। मुझे यह धारणा मान्य नहीं है। कर्तक (कुर्ता) जड्घ (जाघिया) इत्यादि पहिने जाते थे। तेज छुरे बनते थे और शूचिकायें (सुइया) भी। दशार्ण (आजकल का बुन्देलखण्ड) की तलवार तो उत्तरवैदिक काल मे ही विख्यात हो चुकी थी।

श्रमिको को एक पण से लेकर छ पण नित्यतक 'वेतन' —पारिश्रमिक—दिया जाता था। स्त्रिया नृत्य करती थी, परन्तु इनकी सिखलाने वाली स्त्रिया ही होती थीं और वे प्राय पुरुषों के समक्ष नही नाचती थी। नादी (वासुरी) मजीर, झांझ, मृदग, वीणा इत्यादि वाद्य थे और पूरे स्वरों मे गायन होता था। नर्तक गायक और अभिनेताओ को सम्मान प्राप्त था। वाल्मीकि के अयोध्याकाण्ड मे इन्हे राष्ट्र का चमत्कार बढाने वाला कहा गया है। नाटकशालाओ और रगशालाओ को समाज प्रेक्षणी कहते थे। जुआ खेलने का दोप भी था, परन्तु इसे

निन्द्य और तिरस्कार के योग्य समझा जाता था। साठ वर्ष की आयु का पुरुष अपने को जवान कहता था। वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाड मे बतलाया गया है। वाल्मीकि रामायण का सकलन चाहे जब हुआ हो उसकी कथा और धारणा सकलन के बहुत पहले की है।

यज्ञ होते थे, परन्तु उनकी अति के वर्जन का भी यहा वहा सकेत पाया जाता है। महाभारत मे 'अग्नि के कुपच' का वर्णन आया है।

सडको की धूल दबाने के लिये पानी का छिडकाव किया जाता था और रात मे प्रकाश के लिये दीपस्तम्भो की व्यवस्था भी थी।

पूग (क्लब) और भोजनालय थे। सेब, अनार, केले, नारगी इत्यादि फल सुलभ थे।

आदि से अन्त तक जीवन के लिये सजीवता और सजावट की सीधी सादी और ताजी सामग्री थी। बनावट और तडक भडक कम थी। मानव अपने जीवन के उल्लासमय निकट सम्पर्क मे सयम और अनुशासन के निर्देशन के कारण पूरे आनन्द का पात्र होने की समर्थता रखता था। द्वेष, मत्सर, हिंसा और परिग्रह का तिरस्कार किया जाता था। इसलिये विश्वास के साथ सच्चे सुख का सग्रह करने मे उस वैदिक काल के जन को किसी बडी कठिनाई का सामना नहीं करना पडता था।

बिना सयम और अनुशासन के जीवन की गाडी आगे नही बढाई जा सकती। प्राचीन साहित्य में स्थान स्थान पर इसका विवेचन और। पोषण किया गया है। वर्तमान समाज की अनुशासन हीनता से जब प्राचीन काल के समाज की सयम शीलता की तुलना करते हैं तब आश्चर्य होता है कि क्या से क्या हो गया है। वेद नामक शिष्य के कन्धो पर धौम्य ऋषि ने बैलो का जुआ रखवाया—सम्भवत वेद का

अहकार या कोई ऐसा दोष दमित करने के लिये। महाभारत मे यह कथा दी गई है। गुरू से बढकर, कदाचित्, वह शिष्य था जिसने इतने बडे अनुशासन को चुपचाप सह लिया! परन्तु उस काल मे बडे पुरुषो के बनावे की विधि थी, केवल टेढे तिरछे यन्त्रों के निर्माण की नही!!

उस काल की एक झाकी के प्रस्तुत करने का प्रयत्न 'ललितविक्रम' नाटक में किया गया है। उस काल के सलोनेपन, जीवट और सद्यता को हम आज के जीवन मे उतार सकें तो अभिनय कर्त्ताओं को मेरी हार्दिक बधाई।

वृन्दावनलाल वर्मा

कुछ अप्रचलित शब्दों के अर्थ

परिधान—धोती (बुन्देलखण्डी 'परधनी')

द्रापी—बन्डी

कर्णम्—वचन

सुशिरा—नाली

वरत्रा—चरखे की रस्सी

दात्र—हँसिया

समाज प्रेक्षणी—रङ्गशाला

तुन्नवाय—दर्जी

उपाध्याय—वेतन भोगी अध्यापक। इस श्रेणी के शिक्षकों को समाज में कम सम्मान मिलता था।

ग्रामणी—गाव का मुखिया

खेट—खेडा (छोटा गाव)

फाल—हल्का फार

महाशाल—सामन्त

विष्टि
कोर्वी } वेगार

अरण्यानी—वन देवी

मधुपर्क—मधु (शहद) मिश्रित दूध। कुछ विद्वानों ने इसी को 'सोम' कहा है।

ललितविक्रम

पहला अङ्क



पहला दृश्य

[अयोध्या के वाहर सरयू नदी के तीर पर उर्वरा भूमि से लगे हुये एक टीले वाले बन्जर का विस्तृत क्षेत्र। अयोध्या का राजकुमार ललित विक्रम अपने उपाध्याय आचार्य मेघ के साथ है। मेघ अधेड अवस्था का दीर्घकाय सावला पुरुष है। सिर पर जटा-जूट, कटि मे श्वेत सूती परिधान, गले मे रुद्राक्ष, पैरो मे पादुका, शरीर पर ऊनी उत्तरीय। उसकी दाढी काले भूरे वालो की खिचडी है। सिर के वाल अधिक श्वेत हैं। आकृति से जान पडता है कि भावुक, हठी और क्रोधी प्रकृति का है। ललितविक्रम किशोरावस्था मे है। सुन्दर है। वह पीत कोपेय का परिधान और श्वेत रग की द्रापी धारण किये है। पैरो मे उपानह। टीले के नीचे लक्ष्यवेध के लिये छोटी सी परिधि वाला लक्ष्य लगा हुआ है। ललितविक्रम की पीठ पर तूणीर कसा हुआ है जिसमें वाण हैं। प्रत्यञ्चा की फटकार से उङ्गलियों की रक्षा करने के लिये दायें हाथ के कोंचे पर अगुलित्राण पहिने है। वह कई वाण छोडता है, परन्तु एक भी वाण लक्ष्य पर नहीं पडता। वह एक क्षण ठहर कर सरयू नदी की

कपिञ्जल—आगे, पीछे दाये बाये मिले । निकट एक भी नही ।

(ललित बाण छोड़ता है, लक्ष्य–वेध नही होता)

मेघ—(ऊँचे स्वर मे) फिर चूक गये ! कितना समझाया—ध्यान क्यो नही देते ? बाण ओछा पडा । प्रत्यञ्चा को और अधिक खीचो—आकर्ण ।

ललित—अबकी बार लीजिये ।

(ललित प्रत्यञ्चा पर बाण चढा कर लक्ष्य बाधता है)

कपिञ्जल—ऐसे नही । चलाने के पहले डोर को दो अगुल और खीचकर तुरन्त छोड दीजिये ।

(ललित वैसा ही करता है । लक्ष्य-वेध हो जाता है)

ललित—(हर्षोन्मत्त) ठीक रहा ।

कपिञ्जल—डोरी के उस दो अगुल के खिचाव ने काम बना दिया ।

(मेघ की भोहे सिकुड जाती हैं । ललित की आखो मे कपिञ्जल के लिये कुछ अनुराग आता है और क्षण के भीतर ही चला जाता है)

मेघ—(कपिञ्जल से) तेरी यह अनधिकार चेष्टा !

(कपिञ्जल आहट पाकर पीछे की ओर देखता है)

कपिञ्जल—(बिना सम्मुख हुये) क्यो—मैंने ऐसा क्या किया ?

मेघ—क्या किया ? दुष्ट जीव तू शिक्षक बनना चाहता है !

कपिञ्जल—(वैसे ही) नही तो ।

मेघ—(उसी दिशा में देखते हुये) यह कौन है ?

कपिञ्जल—(अशत क्षीण स्वर मे) मेरा स्वामी नीलपर्ण ।

मेघ—हा ! तपस्या के कारण मेरे नेत्र कुछ दुर्बल हो गये हैं इसलिए चीन्ह नही पाया । कुमार, इसके अनेक पोत सरयू और गङ्गा मे चलते हैं । सुनता हू कि लोहित सागर मे भी इसके बडे बडे यान व्यापार करते हैं । प्रभावशाली व्यक्ति है ।

(नीलपणि का प्रवेश। उतरती अवस्था का तोंद वाला मध्यकाय पुरुष। नाक तोते की चोंच जैसी मुड़ी हुई लम्बी। भाल ऊपर की ओर सकरा और दायें से बायें चौड़ा। दाढ़ी श्वेत। सिर पर उष्णीष, तन पर द्रापी और कमर मे उटगड कौषेय धोती। गले मे मुक्तामाल। आँखें इसकी बादाम की जैसी खिची हुई हैं। भौहे सघन। मुखाकृति लालची परिग्रही की और शिष्टाचार हृदय से सम्बन्ध न रखने के कारण बनावटी। चमडे के जूते पहिने है जिनकी आगे की नोक बहुत ऊपर उठी हुई है। हाथ मे डण्डा लिये है। निकट आते ही डण्डा एक ओर रख देता है और जूते उतार कर मेघ के चरण छूता है, फिर ललित के सामने घुटने टेक कर नत मस्तक प्रणाम करता है)

मेघ—देखता है शूद्र कपिञ्जल, उचित शिष्टाचार किसे कहते हैं ?

(कपिञ्जल सिकुड सा जाता है)

नीलपणि—(खड़े होकर) क्या इसने कोई अशिष्ट व्यवहार किया आर्य ? (आँखें फाडकर कपिञ्जल की ओर देखता है। कपिञ्जल इधर उधर झाँकने लगता है)

कपिञ्जल—(क्षीण स्वर मे) नही तो।

नीलपणि—(व्यग के स्वर मे) नहीं तो ! (डाटकर) चुप रह !!

ललित—(कपिञ्जल के प्रति अनुराग की आंशिक जाग्रति में) कुछ यो ही सा। कोई बात नहीं—

मेघ—(उपेक्षा के साथ जिसमे ललित पर क्षोभ की भी मात्रा है) अस्तु—

नीलपणि—(मेघ के क्षोभ को अपनाते हुये) आर्य, यह उद्दण्ड है और न केवल ऋण-तस्कर प्रत्युत काम चोर भी है। पाँच वर्ष हुये तब इसने मुझसे सौ रजत कार्षापण उधार लिये थे। मासिक व्याज नही दिया तो चक्रवृद्धि चढता चला गया। केवल चार कार्षापण प्रति मास—(आतुर गति से) आर्यों को पन्द्रह प्रतिशत प्रति वर्ष और वह भी केवल कर्णम् के विश्वास पर बिना भूमि या गायो के भोग बन्धक के ही ऋण

देता हूँ—(फिर साधारण गति से) परन्तु इसने न दिया, न दिया, तब चुकाने के लिये हमारा दास हो गया—

ललित—देखने मे तो हृष्ट-पुष्ट है और चतुर। अभी तक ऋण-शोध नही कर पाया!

नीलपणि—नही किया इसने राजकुमार। पानी न बरसने के कारण अकाल पर अकाल पडे हैं, परन्तु वरुणदेव की कृपा से मेरे कुये मे पानी है। कुयें से खेत को पानी देते-देते सुशिराओ में पानी बहते देखकर यह खडा हो जाता है, रात को रखवाली करते तारिकाओ की गिनती मे लग जाता है! ऋषि बनने का स्वाग करता है यह दुष्ट मूर्ख—

कपिञ्जल—(कुछ दृढता समेट कर) विनती की कि पुराने अश्मचक्र को हटाकर लोह चक्र को चढा दो और सडे हुये कोश की टूटी हुई वरत्राओ को ही सुधरवा दो जिससे कुये में से पूरा पानी भी तो भर आवे। तो कहते हैं कि अपनी खाल का कोश बनवा और अपनी ही खाल की वरत्रायें भी—

नीलपणि—चुप रे अभद्र! (मेघ से) आर्य, इसकी अतत्परता के कारण मेरे खेतो के यव, गोधूम इत्यादि सभी धान्य सूख रहे हैं। (कपिञ्जल दूसरी दिशा मे मुंह फेरकर निश्वास पर निश्वास निकालता है। ललितविक्रम देखता है और उसके मन में दया उमगती है) छोटा-सा बहाना हाथ लगते ही यह काम छोडकर इधर-उधर चल देता है।

ललित—परन्तु पणि, क्या इसकी खाल से कोश को सुधरवाना चाहिये? हमारे राज्य मे यह सब वर्जित है।

मेघ—शूद्र सच नही कह रहा होगा।

(कपिञ्जल क्षणार्ध के लिये मुडकर देखता है उसके नेत्र लाल हो गये हैं। फिर तुरन्त दूसरी दिशा मे देखने लगता है)

नीलपणि—मैं वरुणदेव की सौगन्ध खाता हूं कि यह झूठा है और मैं सच्चा।

ललित—कपिञ्जल की दासता की अवधि मे अभी कितना समय और रह गया है ?

नीलपणि—पूरे दो वर्ष ।

कपिञ्जल—(झटका-सा खाकर, सम्मुख होकर) नही तो—

नीलपणि—(दात पीसकर) नही तो ! चल यहा से । डण्डे से तेरी स्मरण शक्ति को ठीक करूंगा ।

ललित—आचार्य, क्या यह नीति है ?

मेघ—तुम बहुत वाचाल होते जा रहे हो, राजकुमार ! ध्यान लगा कर शस्त्र-विद्या नही सीखते हो, इधर-उधर की बातो में मन की शक्ति का अपव्यय करते हो । महाराज से कहूगा । समय व्यतीत हो गया है । लक्ष्य-पट्टिका को उठा ले चलो ।

(ललित मुंह बिगाडे हुये जाता है । मेघ उस पर बहुत रुष्ट है)

नीलपणि—आर्य, हम लोग अपने सुदूर स्थित पणिविश देश से आर्यावर्त में व्यापार व्यवसाय के लिये आये न कि कपिञ्जल सरीखे दासो को अपना सर्वस्व अर्पण करके केश मुडाकर लौट जाने के लिये ।

ललित—(कुछ दूरी से) आर्यावर्त के शोषण के लिये नही रे पणि ।

नीलपणि—रक्षा कीजिये आर्य । हम लोग कितना कर राजन्य को देते हैं । हम न हो तो—

मेघ—राजकुमार दुश्शील है । तुम ठीक कहते हो, यदि पणि वणिक इत्यादि न हो तो इन दुर्भिक्षो मे राज्य का संचालन दुष्कर हो जाय । तुम निश्चित होकर जाओ ।

नीलपणि—(दोनो हाथ ऊंचे उठाकर) आर्य को वरुण देव हम सब की रक्षा के हेतु समर्थ रक्खें । (कपिञ्जल से) चल रे चल । (डडा उठाकर) आज तेरी खाल को ऊंचा चौडा न कर पाया तो वरुण का शपथ—(कपिञ्जल को धकियाता हुआ ले जाता है)

मेघ—(मुह फेरकर ललित की दिशा मे) राजकुमार लक्ष्य-पट्टिका उखाड ली है न ?

ललित—हा आर्य ।

मेघ—मैं भी आता हू । (ललित की दिशा में जाता है)

दूसरा दृश्य

(अयोध्या के राजभवन का एक भीतरी कक्ष। कक्ष विस्तृत है, परन्तु उसमें साज शृगार की सामग्री बहुत कम है। द्वारो पर हरे पल्लवो के वन्दनवार हैं। कक्ष के सिरे पर एक ऊंची चौकी लगी हुई है जिस पर कौषेय की गद्दी और तकिया हैं। यह राजा की आसन्दी है। चौकी के नीचे पाद पीठ है। आसन्दी की दोनो ओर उसकी अपेक्षा कुछ नीची चौकोर चौकियां हैं जिन पर स्वच्छ सूती आसनें लगी हैं। छोटी चौकियो पर दो अमात्य एक दूसरे के पार्श्व मे बैठे हुये हैं। दोनो पाडुरग की ऊनी बडिया पहिने हैं। दोनों की धोतिया मोटी सूती और रगीन हैं। सिर पर उष्णीश बाघे हैं। दोनो वृद्ध हैं। कक्ष की भूमि पर रग-विरगा मोटा सूती छादन बिछा है। राजा की आसन्दी के पार्श्वों पर ऊंचे दीप स्तम्भो में अगरू, चन्दन और घी की धूप जल रही है। निकट-वर्ती भीतरी कक्ष से वीणा पर गौडसारङ्ग विलम्बित लय में बजाया जा रहा है। गौडसारग युद्ध और सघर्ष का राग है। वह इस प्रकार से बजाया जा रहा है कि सुनने वालो के मन मे यह भाव प्रेरित हो कि मानव-प्रयत्न में सफलता और विफलता की कडिया होने पर भी अन्त में कठिनाइयो से पार पाकर मनुष्य सफल हो जाता है—सफलता की गति धीमी होने पर भी क्रमिक और अनवरत है। मृदग की धीमी मीठी थपकी की ताल वीणा का साथ दे रही है। नादी (वासुरी) और मन्जीर वाद्य भी सगति कर रहे हैं, परन्तु अधिकाश ऊंचे सप्तक की तानो पर। कक्ष के सामने का द्वार अपेक्षाकृत वडा है जिस पर दो सशस्त्र द्वारपाल खडे हैं। गौरसारग के स्वरो मे सूत भीतर से

'महाराज की जय हो जय हो' कहता है। राजा रोमक का प्रवेश। उसके आते ही अमात्य खडे हो जाते हैं। रोमक उतरती अवस्था का ऊँचा पूरा पुरुष है। वक्ष चौडा, कन्धे भरे हुये। नीले रग के कौषेय की धोती और श्वेत रग की उत्तरीय अग पर है। सिर खुला हुआ। द्वारपाल और अमात्य उसे नमस्कार करते हैं। वह आसन्दी पर वैठ जाता है। अमात्य खडे रहते हैं। रोमक चिन्तित है। दो अतियों के बीच मे झूलने का उसका स्वभाव है। वह कभी इस अति के और कभी उस अति के वातावरण का रग ग्रहण करके प्रभावित होता रहता है, परन्तु उसकी प्रकृति में यह भी है कि जब वह अपना निस्तार नही देखता तब किसी एक निश्चय पर पहुच कर तदनुसार दृढता के साथ काम करता है और फिर सकल्प को शिथिल नहीं होने देता। समय मध्यान्ह)

राजा—(अमात्यो के प्रति) अपने अन्नागारों में अब कितना अन्न है ?

एक अमात्य—अभी तो राजन्य, एक वर्ष तक और काम दे देगा, यदि इन्द्रदेव की कृपा से वर्षा हो गई तो वैश्यो और कृषकों से प्रचुर मात्रा में मिल जायगा और फिर त्रुटि न रहेगी।

राजा—न वरसा तो ? मैं यह पूछ रहा हू।

(अमात्य चुप)

दूसरा अमात्य—तो आर्य पणियो, वणिकों और अन्य व्यवसाइयो मे करो के रूप में जो प्राप्ति होगी उससे दूर देशो का अन्न हमारे उत्साही सार्थवाह ले आयेंगे और प्रजा का भरण-पोषण कर लिया जायगा।

राजा—यह तो दूर की वात है। इस समय मेरे सामने प्रश्न है कि इन दिनो अपने अन्न भाण्डार से दान हीनजनो को कितना दिया जाय। (द्वारपालों से) वाद्य वन्द करवा दो।

पहला अमात्य—भविष्य में प्राप्त होने वाले करो की और उनके द्वारा दूर देशों का अन्न क्रय करने की वात सशय और सकट के वृत्त की है। अन्न का वितरण सीमित करना पडेगा।

(वाद्य वन्द हो जाते हैं)

राजा—मैं भी सोचता हूँ कि यदि इस वर्ष भी दुर्भिक्ष पड़ा तो ह्रासोन्मुखी गोवश और भी क्षीण हो जायगा, हमारा एक आश्रय यह टूटेगा और अन्न की बढ़ती हुई अल्पता मे यदि हमने अपने भाण्डार का अन्न वितरण करते करते समाप्त कर दिया तो राज परिवार भूखो मरने लगेगा। (उसे अपनी बात पर ग्लानि होती है) परन्तु ऐसा होगा नहीं। तो भी अन्नागारों से अन्न का वितरण अब क्रमश सीमित करते जाना चाहिये। (कुछ सोचकर) वर्षा तो होगी, इन्द्र की कृपा अर्जित करने के लिये यज्ञ पर यज्ञ हो रहे हैं, वर्षा रुक नहीं सकती।

एक द्वारपाल—(आगे बढकर) आचार्य मेघ पधारे हैं। क्या आज्ञा है ?

राजा—उन्हे आने दो।

(द्वारपाल जाता है। मेघ आता है। राजा उसको द्वार से लाकर अपने मन्च पर ऊँचा स्थान देता है)

राजा—कैसे कष्ट किया आचार्य ? राजकुमार की शिक्षा तो विधि के साथ चल रही है न ?

मेघ—राजकुमार उद्दण्ड होता चला जा रहा है। इतना दुश्शील हो गया है कि मुह लगकर बात काटने पर उतारू रहता है। कितना भी सिखलाऊँ ध्यान नही देता। आपसे अनेक बार कहा, पर आप विचार नही करते।

राजा—आर्य, आप जानते हैं कि वह हमारा इकलौता पुत्र है। लाडप्यार में पला है, शिक्षा हेतु आपको सौंप चुका हूं। आप आचार्य हैं। ढग से सिखलाने पर वह शीघ्र विद्या को आत्मसात कर लेगा, क्योंकि कुशाग्र बुद्धि है।

(ललित एक द्वार पर ऐसे आ खडा हुआ है कि राजा या मेघ के देखने मे नहीं आता।

मेघ—('ढग से सिखलाने' की वात से चिढकर) सव ढग वर्त लिये, केवल एक शेष है। वह है ताडन। विषधर का विषदन्त निकाले बिना कुशल नहीं, पैर का काटा निकाले विना अवाध गति नहीं, और जैसे मोह त्याग किये विना मुक्त नही वैसे ही ललित का भविष्य विना ताडन के मगलमय नहीं है।

राजा—आपके रोष का कारण? ऐसी कौन सी घटना हुई है, आचार्य?

मेघ—एक वात वतलाऊँ? अनेक हैं और नित्य होती रहती हैं। कितनी वार वतलाऊँ? किसी ने कुसमय ही उसे अथर्व वेद का एक मन्त्र रटा दिया है कि पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में है तो जय मेरे वायें हाथ मे। (राजा सुनकर प्रसन्न होता है। मेघ और भी कुढकर) पर न उसके इस हाथ में कुछ है और न उसमें। कभी वगुला को ताकता है, कभी अस्ताचलगामी सूर्य को, कभी सरयू की लहरो पर मुग्ध होता है, कभी नीलपणि के लहराते हुये धान्य की हरियाली पर—

राजा—(अमात्यों से) वैठ जाओ। (वे आसन ग्रहण करते हैं) आचार्य, अभी वह वालक है। उसके ध्यान को सुचारु रूप से नियोजित करते रहिये।

मेघ—(और भी चिढकर) विना अपने परिश्रम के देवताओ की मित्रता प्राप्त नही हो सकती। सो आपका लाडला ललित लक्ष्य वेध के लिये चलाये हुये वाण तक उठाने का परिश्रम नही करता। कल उसने नीलपणि के साथ अभद्रता का वर्ताव किया। उसका दास कपिञ्जल खेत पर काम कर रहा था। लक्ष्य के पास से वाण उठा लाने के लिये उसे पकड लिया। मैंने निषेध किया तो अवहेलना की। (राजा कुछ सोचने लगता है) जव पणि ने आकर प्रतिवाद किया तो ललित ने उसका अपमान किया। जैसे हाथी के लिये अकुश खेत जोतने के लिये हल, अन्न गाहने के लिये दाम, कुल्या खोदने के लिये खनिज और पुरुषार्थ को दायें हाथ में बनाये रखने के लिये श्रम की आवश्यकता है वैसे

ही ललित के सुधार के लिये ताडन की, क्योकि किसी भी सूक्ति के कोरे रटाने से कुछ नही होता ।

राजा—(बहुत निरुत्साह के स्वर मे) तो आप जौन सा शास्त्रोक्त साधन उचित समझें, काम मे लावें, वैसे पुरुषार्थ और जय के सम्बन्ध वाली सूक्ति तो प्रत्येक बालक को शैशव-काल से ही कण्ठस्थ करा देनी चाहिये ।

मेघ—शास्त्रोक्त साधन ! मुझ सदृश ब्राह्मण के लिये यदि और किन्तु परन्तु, नहीं रचे गये हैं । जहाँ शास्त्र मौन होता है वहा परम्परा सहायता करती है । यदि आपको अमान्य हो तो शूद्र कपिञ्जल को उसका आचार्य बना दीजिये, क्योंकि उससे बढकर अशिष्टता और कदाचार सिखाने वाला दूसरा नही मिलेगा ।

(ललित द्वार से थोडा सा सिर निकाल कर)—कपिञ्जल ने बाण सन्धान की जो क्रिया बतलाई थी उसी से तो मैं लक्ष्य-वेध कर सका ।

मेघ—दुष्ट ! नीच !!

राजा—जा भीतर ! (ललित पीछे खिसक जाता है । अमात्य सिकुड जाते हैं)

मेघ—(कठिनाई से अपने को कुछ सयत करके) क्या यह बाल पिशाच अब भी दण्डनीय नही है ?

राजा— (रुद्ध स्वर मे) कपिञ्जल ने ऐसी कौन सी क्रिया बतलाई जिसकी शिक्षा आपने न दी हो ?

मेघ—(रुद्ध स्वर मे) मेरे प्रश्न का यह उत्तर है !

(ललित द्वार की ओर से)—कपिञ्जल ने बतलाया था कि ज्या को आकर्ण खीचने के उपरान्त दो अगुल का अतिरिक्त झटका देकर बाण छोडो, आचार्य ने नही बतलाया था ।

राजा —क्यों रे नहीं मानता ? देखूं मैं ?

(ललित हट जाता है। मेघ आवेश में आकर मच से उतर पडता है। अमात्य खडे हो जाते हैं। राजा मच पर बैठा रहता है। मेघ पूरे क्रोध में आ जाता है)

मेघ—अयोध्या का भविष्य अशुभ है। चार वर्षों से दुर्भिक्ष पर दुर्भिक्ष पड रहे हैं। निरन्तर यज्ञ करते रहने पर भी पानी नहीं बरसता। ललित सदृश दुराचारी स्वच्छन्दता के साथ बढ़ रहे हैं। जनपद में कष्टो का प्रवाह आ रहा है। तुम अकर्मण्य हो। पापियो को दण्ड देने में असमर्थ। जनपद का उद्धार तुम्हारे हाथो नहीं हो सकता। तुम गिरोगे और फिर गिरोगे। (जाता है)

(एक क्षण सब स्तब्ध रहते हैं)

राजा—आचार्य को इतना क्रोधी तो न होना चाहिये।

एक अमात्य—राजकुमार ने शैशव काल से ही सत्य बोलने की शिक्षा पाई है। उसी निर्भीक सत्य के भाषण पर ये रुष्ट हो गये।

राजा—यथार्थ यह है कि आचार्य मेघ को यह अच्छा नही लगा कि उनके अतिरिक्त कोई और राजकुमार को कुछ भी सिखलावे। विद्या तो ऐसा रत्न है कि जहा मिले वही से सजोले।

अमात्य—यह सूक्ति भी उनको अखरी—

राजा—क्योंकि उन्होंने,नहीं सिखलाई, मैंने बतलाई थी। बिना पुरुषार्थ के किसी भी कार्य पर विजय प्राप्त नही हो सकती। कैसा अच्छा मन्त्र है—पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ मे तो विजय मेरे बायें में है। (मेघ की बात की कटुता को पचाने के प्रयास मे प्रशत मोद-मग्न होकर) बिना पुरुषार्थ के न राजा रह सकता है, न जनपद की समृद्धि, न व्यक्ति और न समाज की उन्नति हो सकती है। अभी तक के पुरुषार्थ के अवलम्ब से ही चार दुर्भिक्ष हम सब ने झेल लिये और भविष्य के दुर्दिन भी काट लेंगे। (मेघ का रुद्र प्रतिबिम्ब ध्यान मे फिर आ जाता है) कैसे भी हों, मेघ हैं आचार्य। यथाशक्ति उनका उपशमन करेंगे।

ललित होनहार है। उसकी शिक्षा के उचित साधन ध्यान मे रखने ही चाहिये। उसे शिष्टाचार भी सीखना ही होगा।

द्वारपाल—(आगे आकर) नील नाम के पणि दर्शन हेतु आना चाहते हैं, क्या आज्ञा है ?

राजा—भेज दो।

(द्वारपाल जाता है)

राजा—क्या यह वही पणि है जिसके विषय मे आचार्य मेघ ने बात की थी ?

एक अमात्य—अयोध्या मे कई पणि रहते है, परन्तु नील नाम का एक ही है। बहुत सम्पत्तिवान है। बड़ा कर दाता है।

(नीलपणि का प्रवेश। धोती अपेक्षाकृत नीची पहिने है और नगे पाव है। आते ही घुटने टेक कर नतमस्तक प्रणाम करता है। राजा अभिवादन करके जब कहता है 'आसन ग्रहण करो नीलपणि' तब हाथ जोडे खड़ा रहता है)

राजा—(ललित के विरुद्ध उपालम्भ की आशङ्का करके) बैठो न पणि श्रेष्ठ ? कैसे आये ?

नीलपणि—दुहाई श्रीमान की।

(ललित द्वार के पीछे फिर आ सटता है)

राजा—निश्शक होकर कहो।

नीलपणि—महाराज, मैं जितना कर देता हूं उतना कोई भी आर्य वणिक नहीं देता

राजा—आपका व्यापार भी वणिको की अपेक्षा बहुत सवृद्ध है।

नीलपणि—(इधर उधर झाक कर और ललित की झाई पाकर) श्रीमान और वरुण देव की कृपा से व्यापार अच्छा चल रहा है, परन्तु कृषि कार्य में एक बड़ा विघ्न उपस्थित हो गया है। मेरा दास कपिञ्जल शूद्र मेरा ऋण चुकाये विना भाग गया है। उसके अनुसन्धान के लिये सहायता की भिक्षा मागता हूँ।

राजा—और कुछ ?

नीलपणि—और कुछ नही, आर्य। उसकी दासता की अवधि में अभी दो वर्ष शेष हैं। पकड कर उसे लौटा दिया जाय तो मेरा काम निर्वाधगति से चलने लगे और ऋण-मुक्त हो जाने से उस शूद्र का परलोक बन जाय।

(राजा अमात्यो की ओर देखता है)

एक अमात्य—(नील से) आपने उसकी मारपीट की या स्वल्प भोजन दिया अथवा किसी और कारण से भाग गया ?

नीलपणि—आलसी था, इस कारण थोडी सी मारपीट कर दी। वैसे मैं उसे भोजन प्रचुर मात्रा मे देता रहा हूँ।

ललित—(द्वार से कुछ अधिक निकलकर) थोडी-सी मारपीट ! आप तो कल कह रहे थे उससे कि घर चलो डण्डे से तुम्हारी खाल को ऊँची नीची करूँगा और न जाने क्या क्या ?

राजा—राजकुमार, यह आचरण अनुचित है। भीतर जाओ।

ललित—(भीतर हटकर) और यह कहते थे कि हम आर्यावर्त में शोपण के लिये आये हैं न कि पोपण के लिये।

नीलपणि—मैंने नही कहा। (ऊपर की ओर हाथ उठाकर) हे वरुणदेव !

राजा—(ऊँचे स्वर में) जाओ भीतर ललित।

(ललित चला जाता है)

राजा—दास की मारपीट का कहीं कहीं विधान तो है, परन्तु इतना नही पीटना चाहिये। अस्तु तुम्हारी रक्षा की जायगी।

नीलपणि—श्रीमान की जय हो।

(जाता है)

राजा—आचार्य मेघ को मनाने का प्रयत्न करूँगा। परन्तु वे उग्र प्रकृति के हैं। जनपद के एक अंश पर उनका प्रभाव है। सम्भव है वे

उस अंश को उत्तेजित करने का प्रयत्न करें। दुर्भिक्षो के कारण जनता वैसे ही विमन हो रही है। सावधान रहना।

एक अमात्य—आर्य निश्चिन्त रहे। वे जनपद को कुपथ पर आरूढ नही कर सकेंगे। जनता का वहुलाश हम सवके साथ है।

राजा—स्वस्ति। अब मैं थोडा-सा विश्राम करूँगा।

(जाता है। वाद्यो पर गौड सारग उसी प्रकार वजता है)

तीसरा दृश्य

[नैमिषारण्य का एक भाग। कहीं कही वन सघन है। वन में एक पगडण्डी है। टोह लेता हुआ कपिञ्जल आता है। फटे पुराने वस्त्र पहिने है। एक हाथ मे लाठी और दूसरे मे पानी पीने का कमण्डल। पैर मे जूते नही हैं। धूल चढ़ी हुई है। वन की एक दिशा से आहट पाकर भयभीत सा खडा हो जाता है। कई कण्ठो से सामूहिक गान का स्वर दूर से अस्पष्ट सुनाई पडता है। स्वर धीरे-धीरे उसी की ओर वढता आ रहा है। वह एक वृक्ष की आड पकड लेता है। समय—दिन का तीसरा पहर]

(नेपथ्य से गान)

हम विविध सत्कर्म करते सौ वरस जीते रहे,
वल पराक्रम मे पगे सज्ञान रस पीते रहें।

(कुछ स्त्रिया कांख मे छोटी वडी डलिया दवाये और हाथ मे खुरपी खुनीता लिये आती हैं। कचुकी के ऊपर ये भिन्न-भिन्न रगो की धोतियाँ पहिने हैं। कछोटे बांधे हैं। उनके केशो में पुष्प गुथे हुये हैं। कोई भी दुर्वल नहीं। सव स्वस्थ हैं। आकृति आर्य नारियो की है। कानो मे कर्ण शोभन और हाथो में चाँदी के कडे और रुक्म पहिने हैं। डलिया भूमि पर रख कर पौधो की जड खोदने लगती हैं। कुछ फल और मूल उनकी डलियो में हैं जिन्हें वे जगल के एक भाग से ले आई हैं। गाती रहती हैं—)

हम विविध सत्कर्म करते सौ वरस जीते रहे,
वल पराक्रम मे पगे सज्ञान रस पीते रहें।
फल फूल गोधन पूर्ण पृथिवी सदा हरियाती रहे,
सुस्मित शरद सौ वर्ष फिर फिर सामने आती रहे।
स्वजन, गोधन, धान्य जनका कभी हीन न हो प्रभो,
नेत्र कर्ण सशक्त, वाणी मजु, मानस प्रवल हो।
तल्लीन शिव सकल्प मे जन सौ वरस रमते रहें,
हम विविध सत्कर्म करते सौ वरस जीते रहें।

(गीत की समाप्ति होते होते एक स्त्री उस वृक्ष के निकट पहुच जाती है जिसकी ओट मे कपिञ्जल खडा है। स्त्री भयभीत नही होती। एक क्षण विचलित सी रहकर चिनौती भरी मुद्रा मे खनिज साधे तनकर खडी हो जाती है)

स्त्री—(कर्कश स्वर मे) तुम कौन ?

(अन्य स्त्रिया सतर्क होकर आत्म-रक्षा और आक्रमण के लिये सन्नद्ध होकर उस स्त्री के निकट आ जाती हैं। कपिञ्जल वृक्ष के पीछे से निकल आता है)

कपिञ्जल—(थोडे से कम्पित स्वर मे) मैं विपत्ति से घिरा एक साधारण जन हूँ। इस नैमिषारण्य मे किसी ऋषि के आश्रम की छाया और शरण मिल जाय तो विपत्ति कट जायगी। उसी की खोज मे हूँ।

एक स्त्री—इस विस्तृत वन मे ऋषियो के आश्रम हैं यहा वहा बिखरे हुये ग्राम हैं और इधर उधर भगेडू, चोर, लुटेरों के वसेरे भी हैं, परन्तु हम किसी से नही डरतीं। तुम कौन हो ठीक ठीक वतलाओ।

कपिञ्जल—ठीक ठीक मेरी यह सूजी हुई पीठ वतला देगी। मैं सताया हुआ हू। (पीठ दिखलाता है)

(स्त्रियो की मुद्रा कुछ शिथिल हो जाती है)

एक स्त्री—किसने मारा तुमको ?

कपिञ्जल—एक पणि ने, दुर्भाग्यवश जिसका दास हो जाना पड़ा था। अकाल पड़ा, मेरी खेती नष्ट हो गई और गोधन क्षीण हो गया। इसलिये ऋण लेना पड़ा। ऋण न चुका पाने के कारण उस पणि की दासता स्वीकार करनी पड़ी । मार पर मार खाता रहा, जब न सहा गया तो जगल के लिये भाग निकला। तीन दिन से भटक रहा हूं। खाने को नही मिला। बहुत भूखा हू। किसी ऋषि का आश्रम निकट हो तो बतला दो देवी, वहां चला जाऊं।

(स्त्रियां द्रवित हो जाती हैं)

एक स्त्री—किसी ऋषि के आश्रम में क्यो ? हमारा गाव निकट ही है। वहा तुम्हे भोजन और आश्रय, दोनो, मिलेंगे।

कपिञ्जल—नही बहिन। उस पणि ने मेरे पीछे जीवगृभ लगाये हैं। राजा उसका सहायक है। गांव मे पकड़ कर बाध लिया जाऊंगा और फिर न जाने मेरा क्या हो। ऋषि के आश्रम मे मेरे साथ यह अत्याचार न हो सकेगा वहा निरापद हो जाऊंगा।

एक स्त्री—इस दिशा में (हाथ का सकेत करती है) धौम्य ऋषि का आश्रम बहुत निकट है।

कपिञ्जल—बड़ी कृपा की। (गमनोद्यत) प्रणाम बहिनो।

एक स्त्री—ठहरो। तुम भूखे हो। वन मे इस समय हमारे अतिथि हो, भूखे नही जाने पाओगे।

(कपिञ्जल रुक जाता है)

कपिञ्जल—आप कौन हो देवी ?

एक स्त्री—हम सब आर्य कन्यायें हैं। किसी के घर कृषि होती है, कोई कर्मार है, कोई गोप, कोई तन्तुवाय—'

दूसरी स्त्री—कोई ब्राह्मण, कोई क्षत्रिय। तुम कौन हो पथिक ?

कपिञ्जल—मैं तो शूद्र हूँ बहिन।

एक स्त्री—कोई भी हो, इस समय अतिथि हो। हमारी डलियो में प्रचुर फल और मूल हैं। पेट भरकर खाओ। यदि धौम्य ऋषि के

आश्रम में इस समय भोजन अप्राप्य हुआ तो भूखे रह जाओगे। (कपिञ्जल सतृष्ण दृष्टि से फल फूल भरी डलियो को देखता है जिनमें सेव, वेर, केले और नारङ्गिया भी हैं) खाओ। तुम्हारे कमण्डल में जल न हो तो उधर वहने वाले निर्झर से ले आऊंगी।

दूसरी स्त्री—या तुम स्वय जाकर पी लेना। आरम्भ करो।

(फूल मूल पाकर कपिञ्जल खाने लगता है)

कपिञ्जल—(खाते खाते) जान पडता है यहा पानी वरसा है। अकाल नहीं पड़ा।

एक स्त्री—वन मे क्षेत्रो की अपेक्षा अधिक पानी वरसा है, परन्तु आवश्यकता से कम। तन्दुल नहीं हुआ। मुद्गग, माश, मसूर, तिल नही हुये, परन्तु यव और गोधूम थोडा वहुत होता रहता है। हम सव जगल के फूल मूल से काम चला लेते हैं।

कपिञ्जल—वहुत स्वादिष्ट हैं।

एक स्त्री—(अधिक परोसकर) अव हम सव जायेंगी। कुछ और चाहिये ?

कपिञ्जल—कुछ नहीं। (जगल में दूर से आहट सुनकर सकपका जाता है) वहिनो, मुझे पकड़ने के लिये उस पणि के जीवगृभ सभवत आ रहे हैं। मैं यहा से भागूं।

(फल समेटता है)

एक स्त्री—निर्भय रहो अतिथि। हम उसी दिशा मे जाती है। उन्हे रोक लेंगी।

दूसरी—पथिक, उठो! जागो!! और वड़ों के पास जाकर सीखो!!!

(स्त्रिया अपना सामान लेकर द्रुतगति से जाती हैं। कपिञ्जल फल मूल समेट कर एक वृक्ष की आड ले लेता है)

नेपथ्य से—देवियो, तुमने एक पुष्टकाय व्यक्ति को देखा है ? वह थोडे समय पहले इसी दिशा में आया है।

एक स्त्री का कर्कश स्वर—जाओ, हमारा मार्ग न छेडो। यहा आसपास हमारे अतिरिक्त और कोई नही आया गया है। चोर, लुटेरे दूर उस दिशा में बसेरा किये होंगे। इस दिशा मे ग्राम और ऋषियो के आश्रय हैं।

वही—कितनी दूर ?

स्त्री कण्ठ—होगा वही कोई पाव योजन, आधा योजन या एक योजन। कौन नापने गया।

वही—हू।

(इसके उपरान्त आहट क्रमश दूर हटती जाती है। कपिञ्जल सतर्कता के साथ दूसरी दिशा में चला जाता है)

चौथा दृश्य

[नैमिषारण्य का दूसरा भाग। वृक्षों के समूहों के बीच-बीच मे खुली हुई भूमि जिस पर कुछ झोपडिया हैं। झोपडिया फूस से छाई हुई हैं। सूर्यास्त होने वाला है। होम हवन के लिये अग्नि प्रज्वलित है। धौम्य ऋषि एक ऊँची सी मन्चिका पर बैठे हैं। धौम्य की आयु का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। वैसे श्वेत जटा जूट और स्मश्रु से वे सौ से भी अधिक के जान पडते हैं, परन्तु आखो के तेज, और देह की चमक से तरुण प्रतीत होते हैं। होम कुण्ड के आस पास आरुणि, वेद और कुल्लक नाम के तीन शिष्य बैठे हैं। तीनो बिना दाढी मूछ के युवक हैं। सब के केश बढ़े हुये हैं। कोपीन पहिने हैं, कटि मे मुन्ज बाधे हैं। आरुणि इन तीनो मे अधिक पुष्ट और बलिष्ठ है। होम की समाप्ति होते होते कपिञ्जल कुछ दूरवर्ती वृक्षकुञ्ज मे आ खडा होता है। उसकी गाठ मे थोडे से फल अब भी हैं]

धौम्य—अब तुम प्रात काल किये सकल्पों को सोचो, फिर कृत्यो का स्मरण करो—कितना सोचा था, कितना कर पाया।

(वे सब कुछ क्षण ध्यानमग्न हो जाते हैं)

(वेद कुछ और अधीर प्रकृति का है। अपने दोषो की अपेक्षा दूसरो मे अधिक दोष देखने के स्वभाव वाला है। दूसरो की छोटी छोटी वातो पर हंस दे परन्तु उसकी बडी भूलो पर कोई हंस दे तो उसके मन में हंसने वाले के प्रति हिंसा जाग पडती है। मन लग जाय तो अध्यवसाय मे ढीला नही पडना।)

वेद—गुरुदेव मैंने जितने सङ्कल्प किये थे उनमे से एकाध ही कार्यान्वित होने से वचा है।

धौम्य—तुमने आरुणि ?

(आरुणि मितभाषी है। जितना करता है उससे कम बतलाता है। उस पर कोई हंसे तो उपेक्षा करता है। धुन का पक्का है। ऊपर से रूखा, भीतर वहुत उदास प्रकृति का)

आरुणि—पूरे प्रकार से एक भी सकल्प को कृत कार्य नही कर सका। (वेद धौम्य की दृष्टि वचाने का प्रयास करते हुये हंसता है। आरुणि उसकी उपेक्षा करते हुये कहता जाता है) ग्राम की प्रदक्षिणा के लिये मगलवीथि का जो 'मार्ग वना है उसको आज भी भलीभाति स्वच्छ नहीं कर पाया।

वेद—(हंसी को सयत करके वात वनाने के लिये) गाव के पशु वारम्वार वीथि में गोवर जो कर देते हैं। ग्रामीणो मे कर्तव्यशीलता नहीं है, गुरुदेव, हम लोग कितना करें।

धौम्य—हूं। तुमने क्षुल्लक ?

(क्षुल्लक कुशाग्र वुद्धि का तो नही है, परन्तु परिश्रमी है। वह कभी कुशाग्र वुद्धि वेद की ओर ढल जाता है और कभी लगन वाले आरुणि की ओर)

क्षुल्लक—मैंने आर्य, थोडे से और छोटे से ही सकल्प किये थे जो पूरे हो गये—कुछ घरो से ये भिक्षा लानी थी सो ले आया और फिर वेद पाठ करता रहा।

(कपिञ्जल को अपने पीछे किसी का पद-चाप सुनाई पडता है। वह भय के मारे सिकुड जाता है)

धौम्य—कल से एक सप्ताह वन मे से फल और मूल संग्रह करके ले आया करो। दुर्भिक्ष मे गृहस्थो का भार कुछ कम कर देना चाहता हू।

आरुणि—(शान्त स्वर मे) जो आज्ञा गुरुदेव।

धौम्य—नहीं, तुम नही। तुम ग्रामवासियो से कुछ भी न लेकर मगलवीथि को स्वच्छ करने और ग्रामवासियो की कुछ बडी सेवा का कार्य करो। फल मूल सग्रह के हेतु तुम जाया करो वेद।

वेद—(क्षीण स्वर मे) हा गुरुदेव, मे अकेला या कुल्लक के साथ ?

धौम्य—तुम अकेले ही।

वेद—जगल में व्याघ्र, शूकर और कभी-कभी हाथी सामने आ पडते हैं, फिर गुरुदेव की जैसी आज्ञा हो।

धौम्य—तुम मे सकल्प की दृढ़ता नही है। उसकी साधना करो। दूसरो पर हँसना सहज है उतना स्वय को सयत करना सरल नही है। तुम सब ध्यानपूर्वक सुनो, वशीभूत इन्द्रियाँ ही कामधेनु गायें हैं, मनुष्य का दृढ़ सकल्प ही उन गायो को दुहता है। इन मन्त्रो को भी सदा सर्वदा गाठ मे बांधे रहो—मा भैः, भय मत करो, मन को हीन और क्षीण मत होने दो, जिस प्रकार वायु और अन्तरिक्ष न डरते हैं न क्षीण होते हैं वैसे ही हमारा प्राण भी न डरे, न क्षीण हो, और जैसे मृत्यु और अमृत, सत्य और शौर्य, भूत और भविष्य न तो डरते है न क्षीण होते हैं वैसे ही हमारा प्राण भी किसी से भी न डरे और न कभी दीन हो।

वेद—(अधिक दृढ़ता के साथ) मैंने इन मन्त्रो को प्राण की गाँठ मे निश्चय के साथ बाँध लिया गुरुदेव।

(कपिञ्जल यह सब सुन कर उत्साह मग्न हो जाता है। अपने पीछे से सुनाई पड़ने वाली पद-चाप से अब उतना भयभीत नही है)

धौम्य—और सङ्कल्प पर ध्यान को केन्द्रित किये रहो। बिना ध्यान के कोई कुछ नही कर सकता। जिसका ध्यान विचलित रहता है वह पशुओ से भी हीन है। ध्यानधारी ही पराक्रमी हो सकते हैं। निर्भय रहना और ध्यानधारी होना श्रेष्ठ जीवन के मूल सिद्धान्त हैं।

(कपिञ्जल अपने पीछे से नीलपरिण के सशस्त्र उग्र अनुचरो को आता देखकर धौम्य के निकट आ जाता है। नील के वे अनुचर भी आ जाते हैं, परन्तु वे ठिठक जाते हैं। संख्या मे सब छः हैं।)

कपिञ्जल—(धौम्य को साष्टाग प्रणाम करके) आपकी शरण में आया हू ऋषिवर। अभयदान दीजिये।

धौम्य—(अभय मुद्रा का हाथ उठा कर) सुस्थिर हो। (कपिञ्जल खड़ा हो जाता है। वह विनीत है, परन्तु अब भयभीत किंचित भी नहीं) कौन है।

कपिञ्जल—अयोध्या का एक दीन दरिद्र शूद्र, ऋषिवर।

धौम्य—सुखी रहो। (अनुचरो से) तुम कौन ?

एक अनुचर—(आगे बढकर) अयोध्या के प्रसिद्ध श्रेष्ठी नीलपरिण के अनुचर हैं हम लोग, आचार्य। और ये राजा के सैनिक।

आरुणि—(खड़े होकर) आचार्य ही नहीं, महर्षि। आश्रम में तुम कैसे घुस आये ?

धौम्य—हां बतलाओ।

एक अनुचर—महर्षि, यह हमारे स्वामी का दास शूद्र कपिञ्जल है। ऋण नहीं चुकाया और यहा भाग निकला है! हम इसे पकड़ने के लिये आये हैं।

वेद—परन्तु यह महर्षि धौम्य का आश्रम है, क्या तुम जानते नही ?

धौम्य—लौट जाओ। यहा से पकडकर नही ले जा सकोगे। यहां से तुम्हारा राजा रोमक भी इस दीन हीन शरणागत को नही ले जा सकेगा ।

अनुचर—हमारे साथ महाराज के ये सैनिक उन्ही के भेजे हुये आये हैं ।

धौम्य—सब लौट जाओ। राजा से कह देना। इसी क्षण जाओ। कपिञ्जल चोर, लुटेरा या हत्यारा नहीं है।

(आरुणि कुछ आगे बढता है। वेद और कुल्लक उसके पीछे)

आरुणि—आश्रम के धर्म का पालन करो। हटो यहा से।

(अनुचर वर्ग अपने को कुछ कठिनाई के साथ सयत करके वहा से चला जाता है)

धौम्य—कपिञ्जल, तुम भूखे होगे। आश्रम में कुछ भोजन होगा। अतिथि होने के कारण तुम उपास्य हो ।

कपिञ्जल—(गद्‌गद् कण्ठ से) मैं भूखा नहीं हूँ महर्षि। वन मे फल मूल मिल गये थे। कुछ साथ लाया हूँ। (वस्त्र में से खोलकर नीचे रख देता है) मुझे अपनी सेवा मे ले लिया जाय तो मानो अमर हो जाऊँगा ।

धौम्य—अर्थात मेरे शिष्य बनना चाहते हो ।

(वेद के होठों पर ग्लानियुक्त मुस्कान आती है जो धौम्य से नही छिपती)

कपिञ्जल—मैं शूद्र हू, महर्षि अपात्र और असमर्थ।

धौम्य—मैं तुम्हारे भीतर कुछ और देख रहा हूँ जो विरलो मैं ही दिखलाई पडता है—

कञ्जिपल—परन्तु विना राजा की आज्ञा या अर्थात् अनुमति के इस आश्रम में कैसे—

धौम्य—मेरे लिये किसी राजा की आज्ञा या अनुमति की अपेक्षा नहीं है। तुम्हारी योग्यता का निरीक्षण, परीक्षण करने के उपरात तुमको शिक्षा दूंगा। ऊपर उठना और आगे बढना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है।

(कपिञ्जल कृतज्ञता से अभिभूत होकर धौम्य के चरण पकड लेता है। धौम्य उसको स्नेह के साथ उठा लेते हैं)

तीनों शिष्य—धन्य गुरुदेव।

धौम्य—होत्राग्नि लेकर कुटी में चलो। सन्ध्या हो गई। (कपिञ्जल से) रात्रि एक देवी है। शान्ति देती है। सुलाती है, व्यथा हरती है और अन्त मे ओज की सघता प्रदान करती है। सूर्य की रश्मिया प्रकृति के अञ्चल मे जो सामर्थ्य छोड जाती हैं उसे रात्रि की निद्रा के शून्य में पक्षपात रहित होकर वितरित कर देती है। तुमको शयन के लिये स्थान बतला दिया जायगा। अपने फल उठा लो। भोर खा लेना।

(कपिञ्जल फल बाध लेता है। धौम्य के शिष्य होत्राग्नि उठा लेते हैं और सब जाते हैं)

पांचवां दृश्य

[नैमिषारण्य का एक और भाग। दिन एक पहर से अधिक चढ गया है। पृष्ठभूमि के सघन वन की हरियाली पर शिशिर ऋतु के सूर्य की किरणें चमक रही हैं। वन का आगे का भाग क्षीण और टुकडो मे है। यहां उत्तर से दक्षिण-पूर्व दिशा से एक छोटी नदी क्षीण धारा मे वह रही है। जगल मे से नदी के किनारे नीलमणि के अनुचर और राजा के सैनिक, एक दूसरे के पीछे, बातें करते हुये धीरे धीरे आते हैं]

एक—निर्जल वन में से निकलकर पानी के दर्शन तो हुये।

दूसरा—बाहुदा के किनारे कुछ मूल भी मिल जाने की आशा है। खड्ग की नोक से खोदो।

एक—उस क्रोधी धौम्य के शाप से बच गये तो सब कुछ पा गये।

दूसरा—(इधर उधर झाँककर) वह बुड्ढा श्वेत रीछ मेरी ग्राँखो के सामने ग्रव तक फिर रहा है।

एक—इन ऋषियो के मारे राजा लोग चोर उचक्को को भी नहीं पकड पाते।

दूसरा—चोर लुटेरे ग्राश्रमो से तो दूर रहते हैं। ग्रकालो ने वहुत-सों को चोर लुटेरा वना दिया है।

(वे सब नदी किनारे के कुछ पौवो के मूल खड्ग की नोक से खोदने लगते हैं)

एक—(मूल खोदते खोदते) इस विशाल वन मे जो कुछ है सब विकट हैं। दीर्घकाय पुरुष, भयकर पशु, चचल गायें, फल वाले वृक्ष ग्रौर चपल जीभ वाली स्त्रियाँ—

दूसरा—इस काल मे भी सब के सब पुष्ट, वृक्षो की भाँति समूचे।

एक—फल मूल गोरस सब सुलभ हैं, भाई—

दूसरा—प्रात काल जव गाव से चले तब ग्रग्निहोत्रो की सुगन्धि दूर दूर तक छाई हुई थी।

एक—सव माया घी ग्रौर सुवास वाली समिधाग्रों की है जो यहा प्रचुर मात्रा मे मिलती हैं।

दूसरा—यहा ग्रयोध्या की ग्रपेक्षा वर्षा ग्रधिक होती है।

एक—सुनते हैं जहा वृक्ष ग्रधिक होते हैं वही वर्षा ग्रधिक होती है।

दूसरा—वर्षा तो यज्ञों से होती है—

एक—परन्तु ग्रपने यहाँ क्यो नहीं हुई? ग्रनेक वडे वडे हो चुके है, ग्रौर हो रहे हैं। फिर भी—

दूसरा—ग्रव यहा ग्रधिक मूल नही मिलने के। उस ग्रोर चलो। वहा पौधे ग्रधिक दीखते हैं। जल भी ग्रच्छा होगा।

(खोदी हुई जड़ों का संग्रह करके सब जाते हैं। सामने से मेघ का यकायक प्रवेश। वे सब रुक कर पीछे हट आते हैं और उसे नमस्कार करते हैं।

मेघ—तुम लोग उस शूद्र को पकड़ने गये थे न ?

उनमें से एक—हाँ आचार्य।

मेघ—क्या दस्युओं में जा मिला है ? अथवा-मिला ही नहीं ?

एक—मिला तो था आचार्य, परन्तु धौम्य ऋषि के आश्रम में जा छिपा है। उन्होंने पकड़ने नहीं दिया।

मेघ—धौम्य ! धौम्य सब उल्टा ही करते हैं। राजा को कुछ करना चाहिये।

एक—आप समर्थ हैं आचार्य। सब कुछ करवा सकते हैं। हम क्या कहें।

मेघ—राजा अकर्मण्य है। मैं देखूंगा। नदी की धार को बांधा जा सकता है, सरोवर के स्थिर अहंकार को छिन्न-भिन्न किया जा सकता है, जो अग्निशिखा जल से शान्त न हो उसका दमन धूल से किया जाता है। यह राजा धर्म और परम्पराओं को दलित करने पर आरूढ है। हम ऐसा नहीं होने देंगे। तुम लोग जाओ।

(वे सब संकुचित से एक दिशा में जाते हैं। मेघ दूसरी दिशा में जाता है।)

छठवां दृश्य

[अयोध्या का सभाभवन। ऊंचा, विस्तृत और खम्भों वाला है। सामने सभापति के बैठने के लिये ऊंचा मञ्च है जिस पर रुई भरी गद्दी बिछी है। नीचे भूमि पर मोटा सूती छादन सभासदों के बैठने के लिये फैला हुआ है जिस पर सभासद बैठे हैं। सभापति के मञ्च के निकट, दायें और बायें कुछ नीचे पाठों और पटों की पंक्तियां हैं जिन पर गण्यमान सभासद आसीन हैं। साधारण सभासद इनके बीच में हैं। राजा का

पुरोहित सोम सभापति के आसन पर। भूमि पर बैठे सभासदों में ग्रामों के प्रतिनिधि ग्रामणी, तक्षण, तन्तुवाय, कर्मार, कर्मकार, रथकार, सूत इत्यादि वर्गों के श्रेणी प्रमुख बैठे हैं। पीठो पर वणिक श्रेष्ठी, मेघ, नीलपणि, राजा के अमात्य इत्यादि हैं। सब मिलाकर सभासदो की सख्या पच्चीस से अधिक नहीं है। पणि, श्रेष्ठी और अमात्य हाथो में सोने के कड़े और गले मे मुक्ता मालायें पहिने हैं। द्रापियां सभी पहिने हैं। कुछ लोग ऊन के कम्बल लपेटे हैं। समय—सन्ध्या के उपरान्त। सभा भवन मे दीपस्तम्भो पर बड़े बड़े दीप जल रहे हैं जिनसे पर्याप्त प्रकाश हो रहा है। एक अमात्य के पीछे छोटी-सी मश्चिका पर ललितविक्रम भी बैठा हुआ है। वह ऐसे स्थान पर है जहा उस पर आगे बैठे हुये अमात्य की छाया पड रही है। सोम उतरती अवस्था का स्वस्थ पुरुष है। वह शान्त प्रकृति का है। आकृति से सहनशक्ति और निश्चय की वृत्ति झलकती है]

मेघ—अब तो सभासदो की उपस्थिति समग्र हो गई है। कार्यविधि का आरम्भ करिये, सभापति।

सोम—(इधर उधर देखकर) आचार्य मेघ, उपस्थिति व्यग्र, अपूर्ण-सी, जान पडती है। अनेक ग्रामो के ग्रामणी नहीं आये हैं। तन्तुवायो का कोई प्रतिनिधि नही दीखता।

नील—उन सब के प्रतिनिधि आचार्य मेघ हैं, आर्य।

मेघ—नील ठीक कहते हैं।

(अनेक कण्ठो से—आरम्भ करिये विलम्ब हो रहा है। तन्तुवायों का प्रतिनिधि यहा बैठा है)

सोम—सभापाल कहा है ?

(उपस्थितों के पीछे से) आर्य मैं यहा बैठा हूँ।

सोम—शील, आचार और बहुश्रुति जिन लोगो में हो वे विधि-पूर्वक न चुने जाने पर भी जनपद की प्रवृत्ति के प्रतिनिधि होते हैं इसलिये कृत्याधिकरण का आरम्भ किया जाता है। तो पहले मैं प्रार्थना

करू । सब जन उसका ध्यान पूर्वक मनन करते रहें । जहा सर्वत्र वनस्पति और वृक्ष तने खडे हैं उस विश्वधारिका पृथ्वी का हम गुण गावें जिसकी चार दिशायें हैं, जहा कृषि की जाती है, जो अनेक प्रकार से प्राणियो की रक्षा करती है, वह मातृभूमि हमे गौश्रो और अन्न से सयुक्त करे । मातृभूमि, तेरे जो प्रदेश हैं, वे रोग, क्षय और भय से रहित हो, हम दीर्घायु हो, हम सदा सजग रहे, तेरे लिये अपने प्राण और सब कुछ बलिदान करने को प्रस्तुत रहे । स्तुति करने वाले मित्रो, अब हम इन्द्र को लक्ष्य कर गावें ।

नीलपर्णि—(मेघ से धीमे स्वर मे जिमे सोम सुन लेता है) वरुण की भी स्तुति की जाय, आचार्य । हमारे धर्म मे इन्द्र की स्तुति वर्जित है । हम कोई उस प्रार्थना में भाग न ले सकेंगे ।

(कुछ कण्ठो से) विलम्ब हो रहा है ।

सोम—(क्षोभ को सयत करके) परमात्मा एक है । न दूसरा, न तीसरा, न चौथा । उसके नाम अनेक हैं । आत्मा दर्पण है । उसी मे अपनी अपनी श्रद्धा के अनुसार परमात्मा को देखकर आज का काम आरम्भ करो ।

मेघ—(बैठे बैठे ही) अकाल पर अकाल पडे हैं, जनता अकालो का सामना करते करते थक गई है । कर्मकारों की वृत्ति कम कर दी गई है । उनको श्रम का आधापर्दा मूल भी नही मिलता । उधर राजा के वेतन-भोगी बलि, भोग और कर सग्रह करके मौज उडा रहे हैं । विष्टि बढ गई है । राजा सौ निवर्तन क्षेत्रो वाले किसानो से दस निवर्तन से बढाकर अपनो तीस निवर्तन भूमि विना कोई पारश्रमिक दिये जुतवा रहा है । आयुधागार में अस्त्रशस्त्र और कोष्ठागार में राजा अन्न धन बढ़ाता चला जा रहा है, इधर जनता भूखो मरने लगी है । राजा ने सोलवें अश से दसवा, दसवें से छटवां और छटवें से चौथा अश कर स्वरूप लेना आरम्भ कर दिया है—

एक अमात्य—यह झूठ है।

मेघ—(तमक कर) ठहरो !

सोम—उन्हें कह लेने दो। आप प्रश्न और अभिप्रश्न कर सकोगे।

मेघ—राजा इस प्रकार अन्न और धन का संग्रह अबाध गति से करता चला जा रहा है। दिखलाने के लिये नाम मात्र का अन्न पीड़ितों को बाटता था अब उसे भी कम कर दिया है। (कराल दृष्टि से उस अमात्य की ओर देखता है) सामग्री का मूल इतना चढ गया है कि साधारण जन तो क्या सम्पत्ति वाला भी क्रय नहीं कर सकता। राजा ने प्रचुर मात्रा में स्वर्ण और रजत एकत्र किया। उनसे मणि-मुक्ता तो लिये, (नीलमणि कुछ घबराता है) परन्तु समय पर सरोवर नहीं बनवाये, कुल्या नही खुदवाई। परिणाम यह हुआ कि अनावृष्टि के काल मे कृषक जनता निस्सहाय हो गई। खेती की बुनाई और निडाई के समय किसान आल्हाद के साथ आदि काल से जो गीत गाता चला आ रहा था, वह छूट गया और उसके स्थान पर वह प्रत्येक प्रकार के भय के सामने घिघियाने लगा है—हमारा अनिष्ट मत करना ! हमारे प्रतिकूल न होना !! जनता को भुलावे मे डाले रखने के लिए समाज प्रेक्षणियो में अश्लील और अनीतिमय आमोद-प्रमोद जुटाये जा रहे हैं।

अमात्य—असत्य ! असत्य !!

एक सभासद—यह तो असत्य है।

मेघ—थोड़ा सा और सुनलो। मेरी ज्ञप्ति अभी पूरी नही हुई है।

सोम—कहे जाइये।

मेघ—(एक वणिक की ओर देखते हुये) इन सरीखे लोगो ने अन्न एकत्र करके छिपा रक्खा है कि महगा कर के बेचें। राजा के कृपापात्र होने के कारण ये जन-शोषण निश्शक होकर कर रहे हैं।

वह वणिक—ऐसा नहीं है आर्य।

मेघ—(व्यग के स्वर मे) ऐसा नही है आर्य ! (सभासदो के प्रति) सभासदो, सोचो कि यज्ञ पर यज्ञ करते हुये भी वृष्टि क्यो

नहीं हो रही है ? पीडित जनपद के कष्टो में कमी किसके पापो के कारण नही हो पाती ? राजा पुण्यवान और धर्मनिष्ठ हो तो जनपद सुखी रहता है, पापी अनाचारी हो तो कष्टो में डूबने लगता है। सज्जनो पुरुषार्थ का उपयोग करो—

ललित—(खडे होकर) मेरे दायें हाथ मे पुरुषार्थ है तो बायें हाथ मे सफलता बनी बनाई। (बैठ जाता है)

मेघ—चुप मूर्ख ! अवसर कुअवसर पर बक बैठता है !! (सभासदो से) इस छोकरे का लाड दुलार करने वाले जब सुनेंगे कि मैं इस सूक्ति का आपके द्वारा क्या उपयोग चाहता हूं तब तिलमिला जायेंगे। देवगण पुरुषार्थी को चाहते हैं—सोये हुये को नहीं। आप सोये हुये हैं अब जागें और अपने पुरुषार्थ से इस राजा को पदपतित कर दें। मेरी ज्ञप्ति यही है। (मेघ की आंखों से क्रोध टपक सा रहा है)

(ललित कुछ कहने के लिये कुलबुलाता है)

सोम—(ललित से) अभी नहीं। (सभासदो से) आचार्य मेघ की ज्ञप्ति का कोई समर्थन करता है ?

नीलपणि—(खडे होकर) मैं करता हूं, देव। ग्रामों के उद्योग-धन्धे चौपट हो रहे हैं। रोग फैल गये हैं जिनके कारण जन और पशु क्षीण हो रहे हैं। हम लोगों का व्यवसाय गिर रहा है। हम व्यवसायी करो के रूप मे राजा को बहुत देते रहे हैं और अवश्य कहूगा कि सुकाल में उन्होने हमारी सहायता भी की है, पर अब तो पीडित करने लगे हैं। हम लोगों के दास भाग-भाग कर जगलो मे जा छिपते हैं और चोरी बटमारी करते हैं, परन्तु राजा उनके पकडने का यथेष्ट उपाय नही करते —

ललित—इस पणि ने अपने दास कपिञ्जल को इतना पीटा था कि वह जगल मे जाकर मर ही गया होगा।

सोम—ठहरो। (नील से) कुछ और ?

नीलपणि—हम सबको राजा और उनके कुमार से डर लगने लगा है—कहीं कोई हानि न पहुचा बैठें। मैं आचार्य मेघ की ज्ञप्ति का समर्थन करता हूँ। (बैठ जाता है)

एक सभासद्—(खडे होकर) आर्य, नीलपणि और इनके वर्ग के पणियो ने स्वर्ण शतमान से लेकर ताम्र के कार्षापण तक सब मुद्रायें अपनी पणशाला मे भर ली हैं इसलिये सुलभ नही रही। आचार्य मेघ सहज कोपी हैं और पणियो के सरक्षक। मैं लुहारो की श्रेणी का प्रतिनिधि होने के अवलम्ब पर आचार्य मेघ की बात का विरोध करता हूँ। (बैठ जाता है)

दूसरा सभासद्—(खडे होकर) मैं तक्षण श्रेणी का प्रतिनिधि हू। तक्षणो की ओर से मैं भी विरोध करता हू।

चार सभासद्—(एक साथ खडे होकर) हम भी विरोध करते हैं। (बैठ जाते हैं)

मेघ—(कडककर) ये कौन ?

एक अमात्य—(थोडा मुस्कराकर) ये सूत, रथकार, तन्तुवाय तुन्नवाय सघो के प्रतिनिधि हैं।

मेघ—इनके कहने से होता क्या है ? एक भी सच्चा विद्वान जो तप और विद्या से युक्त हो, वेदवेदान्त का मर्म जानने वाला द्विजोत्तम हो, वह जो निर्णय करे उसे धर्म मानना चाहिये न कि दस सहस्र की सख्या तक के अज्ञानियो के मत को।

वे सब—(एक साथ) अच्छा ! हू !!

मेघ—इनमें से कोई राजा के रथ बनाते हैं, कोई उनके वस्त्रो की सिलाई करते हैं, कोई उनके यहा बढई का काम करते हैं, कोई गायन वादन और नृत्य के सचालक हैं, और लुहार तो राजा के अस्त्र-शस्त्र बना बना कर ही पलते हैं।

कर्मारो का प्रतिनिधि—(खड़े होकर) हम, कृषकों के फाल, खनित्र, खुरपे, चक्र इत्यादि भी तो बनाते हैं नापितों के लिये छुरे, तुन्नवायो के लिये सुइया। हम अपने कार्यों की गिनती करने लग जावें तो रात बीत जायगी। इतना ही कहना बहुत है कि जनपद की रक्षा के हेतु हम अस्त्र-शस्त्र बनाते हैं और जैसे घन की चोट करना जानते हैं वैसे ही शब्दो की चोट भी। ये आचार्य कहे जाने वाले मेघ जो केवल वेतन भोगी उपाध्याय हैं—

सोम—बस, बस, आर्य। व्यक्तिगत प्रहार मत करो।

(कर्मारो का प्रतिनिधि बैठ जाता है)

मेघ—ग्रामणियो, आप लोग क्यो नही अपनी व्यथा सुनाते ?

एक ग्रामीण—(खडे होकर) आपने सब तो कह दी, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि हमारे कष्टों का कारण राजा के पाप हैं, क्योंकि हम यह नहीं जानते कि राजा ने कौन कौन से पाप किये हैं। (बैठ जाता है)

एक वणिक—(खडे होकर) सभापति और मित्रो, समान मन हो कर उठो, जागो और चलो, समान मन होकर सुखो को भोगो और सब मिलकर दु खो के भारी बोझ को ढोकर ले चलो। परस्पर मीठे वचन बोलो और मिलकर रहो। विपत्त आती है तो चली भी जाती है। राजा को पदपतित नहीं करना चाहिये, क्योकि यदि कुछ विपत्तियाँ राजा के पाप के कारण उत्पन्न होती हैं तो कुछ दैव कोप से भी। मैं और क्या कहूँ, आप सब बुद्धिमान हैं। (बैठ जाता है)

एक सभासद—(खडे होकर) आचार्य मेघ ने जो कहा कि रथकार राजा के रथ बनाते हैं इसलिये उनकी जैसी कहेंगे सो बात नही है। हम जनता की गाडिया भी तो बनाते हैं। हम राजा के आश्रित नहीं हैं। हमारे यहा भड़भूजे का भी काम होता है। (कुछ सभासद मुस्करा देते हैं) हम राजा को आसन्दी से तत्काल उतारने के पक्ष मे नहीं हैं, परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि, 'सैकडो हाथो से इकट्ठा करो' और 'सहस्रों

'हाथो से बाटो' इस पुराने सिद्धान्त का हमारे राजा अनुसरण नहीं कर पाते या नहीं कर रहे हैं।

(बैठ जाता है)

(ललित अपने आगे बैठे हुये अमात्य से कुछ कहता है)

अमात्य—(खडे होकर) सभापति, गर्व, भूख और प्यास से भी अधिक भयकर और दुखदायी होता है। अविद्या मे पडे हुये मूढ अपने को धीर और पण्डित समझकर अन्धे के द्वारा चलाये गये अन्धे की भाति चारों ओर उल्टी चाल चलते है। ऐसे लोगो को आचार्य या ब्राह्मण नहीं कह सकते—

सोम—(मुस्कान के साथ) आर्य, क्रोध आने पर बोलने से पूर्व दस तक गिनती गिन लो और बहुत क्रोध आ गया हो तो सौ तक गिन लो, तब बोलो।

(सब हस पडते हैं)

वही अमात्य—(अपने को सयत करके) देव, मैं क्रोध मे उलझकर बात नही करूगा। इतना अवश्य कहूगा कि निराधार बातो के फलस्वरूप सब को कष्ट भुगतना पडता है। अस्तु। हम सबका सिद्धात है कि स्वराज्य के लिये सदा प्रयत्नशील रहें। अराजक राज्य मे स्वराज्य नही पनप सकता। योग, क्षेम, कुशल ललितकलायें इत्यादि सब नष्ट हो जाती हैं। हमारे राजा ने ललित कलाओ का प्रसार किया है, तो कोई पाप नहीं किया। सरोवर बाधने और कुल्यायें खुदवाने के लिये पणियो और वणिको को द्रव्य पणशालाओ से बाहर निकालना चाहिये—

वणिक—(खडे होकर) राजा हम से ऋण ले। अपना सर्वस्व कोई यो ही कैसे खो देगा ?

(बैठ जाता है)

वही अमात्य—हो सकता है जो कुछ इन्होंने कहा ठीक हो। परन्तु हमको एक बात सदा स्मरण रखना चाहिये कि छोटे से छोटे खेट से लेकर ग्राम, पुर और नगर एक ही अन्विति के विविध अङ्ग और

रग हैं, एक ही समन्वय के परस्पर पोषक भाग और अनुराग । इनको एक दूसरे के विरुद्ध उकसाने लड़ाने की वृत्ति निन्दनीय है—

मेघ—मेरी बातों का उत्तर दीजिये आर्य ।

वही अमात्य—(कुढकर) अन्नचोर परिग्रहियो ने चाहे वे पणि हों अथवा कोई और, अन्न भाण्डार छिपा रक्खे हैं। वे ही कर्मकारो, श्रमिकों को हँस-हँस कर सतप्त करते और अपना दास बनाते हैं । राजा उनके व्यापक प्रभाव के कारण उन्हें दण्ड नहीं दे पाता । नीलपणि ने दीन कपिञ्जल को इतना मारा पीटा कि राजा क्या करते ? वह भागकर सौम्य ऋषि की शरण में चला गया, हमारे चरो को रीते हाथ लौट आना पडा । इन्द्रदेव की अकृपा के कारण वृष्टि नहीं हुई । इसमे राजा का क्या अपराध ?

मेघ—जनपद में सुख रहे तो राजा कहता फिरता है यह सब मेरे पुण्य का फल है । यदि दुःख छा जावे तो फिर वह क्यो न स्वीकार करे कि यह उसके पापो का परिणाम है ? हमें उसके पापो का अनुसन्धान करके नहीं सभा या समिति के सामने रखना है, राजा को स्वय अनुसन्धान करके अपने पाप बतलाने की परम्परा है । सभा और समिति को उसे पदपतित करने का अधिकार है ।

वही अमात्य—मैं नम्रतापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि सभा और समिति को राजा के चुनने और हटाने का अधिकार है । आचार्य मेघ स्वयं कृषि नहीं करते, परन्तु कृषकों के प्रतिनिधि बन बैठे हैं । सभापति, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ऐसी सभा राजा को पददलित करने का अधिकार रखती है ? सज्जनो, राजनीति अपना प्रकट कार्य इतिहास की शिलाओ पर अंकित करती है और अव्यक्त कर्म दर्शनशास्त्र के हृदय पर । आचार्य मेघ की शक्ति न पहले ही पात्रता रखती है और न दूसरे की योग्यता । आप स्वीकार न करें ।

सोम—सभा विचार भर कर सकती है। निश्चय करने का अधिकार समिति को है जिसका अधिकार सदा से सर्वव्यापी होता चला आया है।

मेघ—(आवेश मे खडे होकर) सब सुन लें, मैं जनपद की एक एक अगुन्न भूमि की यात्रा करूँगा। जनता को जगाऊँगी। जागी हुई जनता की वह समिति तो इस पापी रोमक को हटावेगी। उसका सभापति जो ईशान कहलाता है वास्तव मे देव की भाति जनमत का यथार्थ सचालन करेगा।

सोम—सबको कटु शब्द सुनाने का आपका स्वभाव पड गया है। शात होकर सोचिये, समझिये और बोलिये। विरोध सहन करने की शक्ति सस्कृति और सभ्यता की कसौटी है।

मेघ—मैं निर्भीक सत्यवादी ब्राह्मण हू। किसी से नीति सीखने की आवश्यकता नही रखता।

सोम—आप सभा का अपमान मत करिये।

(सभा मे गडबड मचती देख कर सोम सभापाल को बुलाकर शाति स्थापित करता है)

मेघ—(उसी क्रोध मे) सभापति आप इस नीच पापी राजा के पुरोहित हैं अन्यथा आप भी कहते, जैसा कि मनु महाराज कहते हैं कि जनपद के दुख राजा के पापो के परिणाम होते हैं। मैं कल से ही बाहर निकलता हूँ और सतप्त जनमत को सभालता हूँ। (गमनोद्यत)

वही अमात्य—वेदवेत्ता ब्राह्मण ऐसा नही करते। दूसरो की मैं कहू क्या। हमारा जनपद प्रवुद्ध है। नही सुनेगा।

(मेघ दांत पीसता है)

ललित—(यकायक खडे होकर) मनु महाराज ने कुपथगामी ब्राह्मणो के लिये कहा है कि—

मेघ—(कडक कर लौटते मुडते) रे दुष्ट पिशाच ! तेरे ही कारण तेरे पिता रोमक का नाश होगा। कौशल मे वशानुगत राजा होता

आया है, परन्तु सदा जनता की अनुमति के सम्बल पर। नीच बालक और उन्मत्त अमात्यो, मत भूलो कि वही जनता अब उस वंशपरम्परा को समाप्त करेगी, और, उसमें मेरा, मेरा हाथ होगा। यह पुरोहित भी उसी के साथ जायेंगे। (जाता है। उसके जाते ही सभा मे कुछ क्षण के लिये रौरा मच जाता है)

सोम—शान्त ! सभापाल, इन सबको विनय के साथ शान्त करो। (सभापाल वैसा ही करता है)

कर्मारों का प्रतिनिधि—हमको अपना राजकुमार राजा से भी अधिक प्रिय है। हम उसके मुंह से मनु महाराज की वह बात सुनना चाहते हैं जो अधूरी रह गई थी। (कुछ कण्ठो से—सुना दो वत्स, सुना दो')

एक अमात्य—कह दो राजकुमार।

(ललित सोम के मुंह की ओर देखता है)

सोम—(विरक्ति का भाव प्रदर्शित करते हुये भी अपनी भीतरी इच्छा के अनुकूल) कह दो। वे तो उसकी कल्पना करके ही गये हैं जिनके समक्ष उस सूक्ति को नहीं कहना चाहिये था।

ललित—(प्रोत्साहित होकर खडे खडे) पाखण्डी, बुरे कर्म वाले, बिल्ली और बगुले के ऐसे व्रत का रूप धरे हुये, वेदविद्या से शून्य ब्राह्मणो से बात भी न करे। इस प्रकार के ब्राह्मण बक और मार्जार वृत्ति के नीचे अपने पाप छिपाकर अल्पबुद्धि और अबोध नर-नारियों की वंचना और ठगी करते फिरते हैं। इनको तो पानी भी न दे। ये झूठे ब्राह्मण अन्धे नरक मे गिरेंगे। (सिकुड कर बैठ जाता है और इधर-उधर देखता है। कुछ लोग प्रसन्न हैं, कुछ मुंह बिगाड़ते हैं। सोम यह सब देखता है)

सोम—कुछ भी हो, मेघ धनुर्विद्या के आचार्य हैं और कुछ ही समय पूर्व ललित के अध्यापक रहे हैं। उनके सम्बन्ध मे अप-शब्दो का व्यवहार उचित नहीं हुआ। (कुछ कण्ठो से—'उचित हुआ', कुछ से 'नहीं हुआ')

ललित—मेरे पूज्य पिता को उन्होने गालिया क्यों दी ?

(फिर कोलाहल मचता है)

सोम—शान्त। सभा मे कुछ लोगों का मत राजा के अनुकूल जान पड़ता है और कुछ का प्रतिकूल, परन्तु—

कर्मारों का प्रतिनिधि—सभासदों का छन्द-सग्रह कर लीजिये न। स्पष्ट हो जायगा।

एक वणिक—हा एक साधन प्रतिनिधियो के बहुमत का सज्ञापक यह भी है।

एक अमात्य—प्रतिनिधियो की उपस्थिति पर्याप्त नही है, सभापति।

सोम—(एक क्षण सोचकर) राजा को सभा और समिति में आने का और अपनी स्थिति को स्पष्ट करने का सदा से अधिकार है। वे नही आये और उन्होंने अल्पवयस्क, स्वल्पमति राजकुमार को भेज दिया। इसलिये छन्द-सग्रह परम्परा की बिडम्बना मात्र होगी। मैं समझता हू कि एक उद्वाहिका बना दी जाय जो सब बातों पर ध्यानपूर्वक विचार करके अपनी सम्मति अयोध्या जनपद की समिति के सामने निर्णयार्थ रख दे। समिति का अधिवेशन होगा अवश्य ही, क्योंकि बहुत समय से नहीं हुआ है और अब आचार्य मेघ करवा के छोडेंगे। अतएव मुझे थोडे से विवेकी, बहुश्रुत प्रतिनिधियो की एक उद्वाहिका नियुक्त करने की बात उचित जान पडती है।

एक वणिक—ठीक है। (कई सभासद समर्थन करते हैं)

सोम—उसमे पाच व्यक्ति पर्याप्त होंगे।

कई कण्ठ—ठीक है। समय बहुत हो गया है। शीघ्रता कीजिये।

सोम—उसमें किञ्चित समय लगेगा। दो एक दिन में ही फिर सभा करके पाच व्यक्तियो को नियुक्त कर लेंगे। अब आज की कार्य-विधि समाप्त की जाती है। (सब धीरे धीरे जाते हैं)

[पटाक्षेप]

दूसरा अङ्क



पहला दृश्य

[नैमिपारण्य का एक भाग। सघन वन में होकर थोडी दूर एक छोर पर गोमती नदी वह रही है। सूर्योदय हो चुका है। आगे आगे धौम्य, पीछे पीछे कपिञ्जल आ रहे हैं। वसन्त ऋतु आ चुकी है। ऋतु कुछ ठण्डी है। दोनों पतले कम्बल ओढे हुये हैं। कपिञ्जल के केश बढ़ गये हैं। दोनो एक स्थान पर रुक जाते हैं]

धौम्य—अब मैं लौटूगा कपिञ्जल। वह जहा गोमती उन वृक्ष समूहों मे होकर बहती आती है, तुम्हारा स्थान रहेगा। यह अरण्यानी है। (हर्ष के साथ) अरण्यानी किसी को नही मारती। साधारणजन के लिये व्याघ्रों और चोरो का भय रहता है, परन्तु तुम निश्शङ्क और निर्भय रहना। देह को पालने वाले फल मूल प्रचुर मात्रा मे मिलते रहेंगे। स्वादिष्ट भी हैं।

(कपिञ्जल घुटने टेक कर धौम्य के चरणों मे अपना सिर रखता है)

धौम्य—उठो वत्स। सुनो। (कपिञ्जल हाथ जोडे खडा हो जाता है) मैंने तुम्हारी प्रत्येक प्रकार से परीक्षा ले ली। तुमको मैं योग के उपयुक्त समझ कर यहा समाधि लगाने के लिये पहुचाने आया हूं।

कपिञ्जल—गुरुदेव के आशीर्वाद से सम्भव है कुछ पा जाऊँ वैसे तो मैं अत्यन्त तुच्छ हूँ।

धौम्य—अपने को तुच्छ मत समझो, नम्र अवश्य बने रहो। तुम्हारे भीतर जो आत्मा है उसमें परमात्मा का दर्शन करो।

कपिञ्जल—परमात्मा क्या है गुरुदेव ?

धौम्य—कौन जानता है ? (हँसकर) यह सब सृष्टि कहा से हुई, किसने की किसने नही की, वह कौन और क्या है यह वही जाने, (और भी हँसकर) हो सकता है कोई भी न जानता हो। (यकायक गम्भीर होकर ऊपर की ओर देखते हुये फिर कपिञ्जल की ओर) सदा स्मरण किया करो। देव मुझे नीचे पडे हुये को पुन ऊपर उठाओ और मेरे भीतर जो अजर अमर आत्मा है उसे तेजस्वी करो, मुझे ज्योति दो।

कपिञ्जल—(श्रद्धा के साथ) देव, मुझ नीच पडे हुये को पुन ऊपर उठाओ। मेरे भीतर जो अजर अमर आत्मा है उसे तेजस्वी करो। मुझे ज्योति दो।

धौम्य—वत्स कपिञ्जल, तुम आस्था और श्रद्धा के साथ ध्यान लगाना। श्रद्धा शक्ति की जननी है। भय घृणा मत्सर, क्रोध, हिंसा और परिग्रह से मन को दूर रखते हुये योगाभ्यास करना। प्राणायाम की क्रिया तुमको बतला चुका हू और तुमने थोडे ही समय मे आश्चर्यजनक उन्नति भी करली है। अब उस स्थान पर स्थित होकर समाधि लगाते रहना। ध्यान इधर उधर न भटकने पावे। चित्त को पूर्ण रूप से एकाग्र रखना। योग के दो मार्ग हैं—एक अन्धकार का दूसरा प्रकाश का। वान्छाओं वाला अन्धकार का है। इस पर जाकर मनुष्य अभीष्टो की प्राप्ति भर कर सकता, परन्तु अन्त मे गर्त में पतित होता है। प्रकाश के मार्ग वाला निरन्तर आगे बढता जाता है। जो कुछ इससे पाओगे वह मेरे आश्रम मे नही मिल सकता था।

कपिञ्जल—जो आज्ञा गुरुदेव। (साष्टाग प्रणाम करके जाता है। धौम्य उसके प्रति वरद हस्त करके लौट पड़ते हैं)

दूसरा दृश्य

[अयोध्या जनपद का एक ग्राम जो वृक्ष समूहो मे स्थित है। नर-नारी खेत की कटाई कर रहे है और कटाई का गीत गा रहे हैं। कुछ कटैये कटी बालो को एकत्र करके खलिहान मे ले जा रहे हैं। स्त्रिया कछोटे बाधे हैं। पुरुष जाँघिया पहिने हैं और सिर पर भिन्न-भिन्न रगो के कपडे लपेटे हैं। शरीर पर खुली द्राषियाँ पहिने हैं। जो मैली कुचैली हैं। पुरुषो मे एक सुवाहु नाम का है। सुवाहु गोरा चिट्टा युवक है। उसका स्वभाव सहसा प्रवर्ती है। समय दिन का दूसरा पहर]

❀ गीत ❀

स्त्रिया—पृथ्वी के तरु मधुर दूध से भरे खड़े हैं,
मेरे वच मे मञ्जु पयस के विन्दु पडे हैं,
शुभ्र सुरस से पूर्ण एक भगवान निराला,
कहीं न वसकर भी जगको देता उजियाला।
अलख अदेही देव विनय सब सुनता मेरी,
पाकर केवल विनय दान मे देता ढेरी।

पुरुष—इस प्रकार सब भाति दूध से भरा,
अमित मैं लाल यहा पाता हूँ।

स्त्रिया—सौ वाहो से सँजो, सहस से जन को देता;
उपज चौगुनी कर, भविष्य को गोदी भरता,
गृहदेवी को चार पुरी, गन्धो को अय,
तुझे चढ़ाकर एक भरी, पा जाता आश्रय।
सग्रह औ उत्कर्ष प्रजापति के दो चेरे,
प्रचुर अनन्त सम्पदा घर में लावें मेरे।

पुरुष—जन धन से सम्पन्न ओज से ओत,
विमल यह वर लेकर जाता हूँ।

(गीत की समाप्ति पर)

एक कृषक—भोजन की बेला हो गई। चलो उस पेड के नीचे भोजन पान करें।

सुबाहु—थोडा सा काम और हो जाता तो अच्छा ही रहता।

कुछ स्त्रियां—नहीं।

(मेघ आता है। वह नगे पैर है। उसकी वेश-भूषा को देखकर कृषक नमस्कार करते हैं। मेघ आशीर्वाद देता है)

एक कृषक आगे बढ़कर—आप कोई ऋषि हैं? हमारे अतिथि हैं। हमारे पास मधुर अन्न है। भोजन करिये।

मेघ—मुझे अन्न की भूख नही है। तुम्हारी श्रद्धा का भूखा हू। चाहता हूँ कि श्रद्धा और कर्तव्य, आदर्श और क्रिया, बल और बुद्धि, उत्साह और प्रगति, भक्ति और तेज का संयोग हो।

(सुबाहु मेघ के निकट आता है)

सुबाहु—हमको सीधी भाति समझाइये, क्या वात है? छाया में चलिये।

मेघ—छाया कहां है? राजा जो जनपद की छाया भी कहलाता है, पापो का पुञ्ज वन गया है। छाया अब नहीं रही। अकाल पर अकाल पड रहे हैं। कृषि नष्ट हो रही है। ग्रामों के उद्योग धन्धे मिटते चले जा रहे हैं। तुम दुर्बल होते जा रहे हो, राजा स्थूल पड़ता चला जा रहा है।

एक कृषक—हमने तो कई वर्षों से उसे नही देखा है। क्या बहुत स्थूल हो गया है? बहुत फूल गया है क्या?

मेघ—उसकी देह नही उसका भीतर वाला। तुमको सोख-सोखकर सम्पत्ति इकट्ठी कर रहा है। अकालग्रस्त जनता के लिये कुछ नही कर रहा है। तुम्हारे गाव के हितार्थ उसने कुछ किया?

एक स्त्री—(अपने स्थान से ही) हमें किसी से कुछ नहीं चाहिये। परमात्मा का और अपनी भुजाओ का भरोसा रखते हैं। धरती माता हमे वहुत देती रहती है।

सुवाहु—जनपद मे हमारा गांव निराला तो है नही वहिन, वात सुनो ऋषि क्या कहते हैं। (मेघ से) छाया में चलिये, कुछ भोजन करिये।

मेघ—धूप मे रहने का मेरा व्रत है, और मैंने प्रण किया है कि जो ग्राम मेरी वात सुनेगा और उसके अनुकूल आचरण करेगा, उसी का अन्न जल ग्रहण करूगा अन्यथा नहीं।

सुवाहु—तो हमें वतला दीजिये। हमने सुना है कि राजा ने किसी ऋषि का अपमान किया है—(मेघ के मुह की ओर ताककर रह जाता है)

मेघ—मैं ही वह ऋषि हूं। वेदों के जानने वाला और धनुर्विद्या का विशारद। परन्तु मैं अपने अपमान का शोध करने कराने के लिये नहीं व्रतधारी हुआ हूं, जनपद को अधिक दुर्गति, विपत्ति और वाधा से वचाने के लिये निकला हू।

सुवाहु—तो कहिये न हम क्या करें।

मेघ—समाज का जन्मदाता चाहे कोई हो, परन्तु उसके अग और रूप आर्थिक संघर्पों के हाथो वनते विगडते आये हैं। ग्राम और नगर जव दुर्वल निर्वल हो जाते हैं तव राजा के हाथ मे सम्पत्ति और सत्ता इकट्ठी होकर वढ जाती है और उसके थोडे से आश्रित उसकी छाया में वने रहकर मोटे पडने लगते हैं। साधारण जनता दासता की ओर वढने लगती है। अकाल पडते हैं और जनपद का नाश होने लगता है। तुम सव की दुर्वलता राजा और उसके वर्ग वालों के पापो का फल है। उसको आसन्दी पर से उतारो और राजसत्ता को समिति के हाथ में देकर स्वर्ण वालो का स्वर्ण, रजत वालो का रजत और वडी-वड़ी भूसम्पदा वालों की भूमि लेकर दीन-दरिद्रो में वांट दो। और कुल्यायें, कूप, सरोवर इत्यादि खुदवा वंधवा कर सव ग्रामो मे ऐसी

खेती करवाओ जैसी तुम्हारे ग्राम मे हुई है, जिसका गीत तुम अभी अभी गा रहे थे।

सुबाहु—शीघ्र बतलाइये हम क्या करें क्योंकि हमे भूख लग रही है।

मेघ—सघर्ष करो। राजा को शाप दो, प्रात सन्ध्या दोनो वेला—उसे एक महीने तक कोसो। इसके उपरान्त समिति की बैठक करवा के बहुमत से निर्णय करो कि राजा को आसन्दी से नीचे पटक कर सदा के लिये कीडे मकोडे की भाति कर दिया जाय।

एक कृषक—अभी तक हम यह सीखते आये हैं कि हम सब एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें, किसी की सम्पत्ति की लालसा न करें, आज हम यह सब क्या सुन रहे हैं? राजा ने कौनसा पाप किया है?

सुबाहु—ठहरो। यह तो समिति निर्णय करेगी जिसको सब अधिकार है, इसमे कोई सन्देह नही कि जनपद मे ऐसे अनेक स्थान हैं जहा अकाल और रोग जन और पशु का विनाश कर रहे हैं।

वही कृषक—हम नित्य प्रार्थना करते हैं कि हमारा द्वेषी कोई न रहे, और यह कि दुष्कर्मी मनुष्य सत्य मार्ग को पार नही कर सकते तो हम दूसरो से द्वेष क्यों करें? दूसरो की चोरी, लूट, मारकाट क्यो करें।

मेघ—देखो, देवगण तपस्वी को छोडकर दूसरे के मित्र नहीं होते। मेरी तपस्या जनपद से छिपी नही है। क्या तुम जानते हो?

वह कृषक—(धीमा पडकर) ठीक ही कहते होगे, देव।

सुबाहु—मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा देव और हमारे गाव का बहुत सा भाग समिति के आयोजन मे भाग लेगा। हम वैश्य हैं। किसी से नही दबते और समिति में निर्भय होकर आचरण करते हैं।

मेघ—तुम विवेकी हो वत्स। अब मैं छाया में बैठकर तुम्हारा अन्न ग्रहण करूंगा, वैसे न करता। [गमनोद्यत]

(स्त्रिया जाते जाते एक दूसरे से सकेत करती हैं जो मेघ के पक्ष समर्थन मे नहीं है। सुवाहु आगे आगे आता है। उसके पीछे अन्य पुरुष और स्त्रिया। दो पुरुष पीछे रह जाते हैं, जिनमें से एक वह है जिसने मेघ की वात का प्रतिवाद किया था।

वह पुरुष दूसरे से—यह ऋषि तो वडा घमण्डी और क्रोधी जान पडता है। हिंसी भी है—

दूसरा—अच्छा होगा हम लोग चुपचाप उसकी वात को सुनलें। करना तो फिर अपने मन का है न। जनपद समिति की बैठक वहुत समय से नहीं हुई है। वह हम सवको मानना पडेगा।

(दोनों जाते हैं)

तीसरा दृश्य

[अयोध्या का एक वडा चौहट्टा। प्रात काल होने में अभी विलम्व है अन्धकार और सुनसान छाया हुआ है। तारे छिटके हुये हैं। पूर्व दिशा की क्षितिज पर हलके श्वेत रग की लम्वी और अपेक्षाकृत कम चौडी रेखा फैली हुई है। राजभवन वादित्रों के वाद्यन्त्रो का सगीत अन्धकार के सुनसान को जगा सा रहा है। विलम्वित लय मे भैरव-राग के स्वरो से तानों का सृजन इस प्रकार हो रहा है जैसे गहरी नींद में सोते सोते कोई जमुहाई लेकर अगडाइयां ले रहा हो और उसे जाग पडने का आनन्द प्राप्त हो रहा हो]

(दीर्घवाहु धीरे धीरे आता है। अन्धेरे मे उसकी छाया लम्वी और काली लगती है। वह जुआ खेल कर लौटा है और ऊंघता सा चला आ रहा है। चौहट्टे पर आते ही ठवटा लेता है और गिर पड़ता है)

दीर्घवाहु—(चिल्लाकर) मार डाला ! मार डाला !!

(एक नागरिक आता है)

नागरिक—क्या हुआ ? कौन हो ?

दीर्घबाहु—(बैठकर आँखें मलते हुये) ऐसा लगा जैसे किसी ने पीछे से धक्का देकर गिरा दिया हो।

नागरिक—क्षत तो नहीं हो गये ?

दीर्घबाहु—पैर में चोट आ गई है। (कराहता है)

नागरिक—क्या आँखें खोल कर नही चल रहे थे ?

दीर्घबाहु—(धीरे धीरे खडा होकर वस्त्र झाडते-पोछते हुये) आखें खोलकर तो चल रहा था, परन्तु मार्गों का सुधार नही किया गया है और जल नहीं छिडका जाता। गड्ढे हो गये हैं ठीक वैसे ही जैसे हमारे भाग्य मे गर्त। गड्ढो मे धूल इतनी हो गई है कि उसमे घुटने धस जायें। दीपस्तम्भो के दीप महीनो से नही जलाये गये। आग लग जावे इस राजा में।

नागरिक—आप कौन हैं ? इस समय कहाँ से आ रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं ? यह समय तो घरो मे रहने का है।

दीर्घबाहु—द्यूतशाला मे जुआ खेलकर लौटा हूं। राजा के निमन्त्रण पर जाना पडा। मेरी दस सहस्र निर्वतन भूमि है। राजा ने आधी जीत ली !

नागरिक—घर की घर में ही तो रही। आप कोई महाशाल हैं ?

दीर्घबाहु—हा, और आप ?

नागरिक—वणिक हूं और योधा भी।

दीर्घबाहु—आर्य, कैसे दिन देखने को मिल रहे हैं इस राजा के राज्य में ! न दास सुखी है, न वैश्य, न वणिक—कोई भी तो नहीं। यह जैसा है तैसा है ही, इसका राजकुमार जब राजा होगा तब और भी अन्याय और अधर्म वढ जायगा।

वणिक—(दीर्घबाहु से 'अधर्म' की बात सुनकर) महाशाल, आप सच कहते हैं। जनता सन्तप्त होने के कारण क्षुब्ध हो उठी है। चार छ महीने मे समिति का अधिवेशन होने वाला है, देखें तब तक क्या होता ?

दीर्घवाहु—हम महाशाल राजा के अङ्ग कहलाते हैं, हम मे से अनेक अब उनके विरुद्ध हो गये हैं। एक लाख निवर्तन भूमि राजा के पास पहले से है, अब और बढा रहे हैं।

वणिक—आओ न इधर बैठो। पाव दूख रहे होंगे। ऊषाकाल है, थोडे समय में ही प्रात.काल हो जायगा। फिर नित्य कर्म करके सो सकोगे।

दीर्घबाहु—नहीं आर्य, घर जाकर घडी दो घडी सोऊँगा। मार्ग मे ऊँघता आ रहा था कि उबटा खा गया। समिति के अधिवेशन में तो आप सब आओगे। राजा भी आयेंगे। उनको खरी-खोटी सुनानी हैं और फिर अयोध्या के उद्धार की बात का निर्णय करना है।

वणिक—आऊँगा। मैं इस चौहट्टे का प्रतिनिधि हूं। आज नगर में क्या होने वाला है आपको सूचना है ?

दीर्घबाहु—नहीं तो। कोई विशेष घटना घटने वाली है क्या ?

वणिक—सब पाठशालायें बन्द रहेंगी, केवल औदनिक खुले रहेंगे। शिल्पियो, कर्मकारो वणिको, पाणियो, आचार्य मेघ के सजातीय ब्राह्मणो और कुछ क्षत्रियों के सघ और समूह राजा के प्रति अपना रोष प्रदर्शित करने के लिये नगर के प्रत्येक भाग में घूमेंगे और सम्पूर्ण जनता को जाग्रत करेंगे।

दीर्घबाहु—मनोरञ्जन होगा और लाभ भी। अब मैं चलूं।

वणिक—प्रात काल की पौ फटने वाली है। मैं भी नित्यकर्म के लिये जाता हू।

(दोनों भिन्न दिशाओ में जाते हैं)

चौथा दृश्य

[अयोध्या के राजभवन का एक भीतरी कक्ष। राजा का मञ्च, अमात्यों की मञ्चिकायें, भूमि का छादन इत्यादि उसी प्रकार का जैसा

पहले अंक के दूसरे दृश्य में था। राजा रोमक मन्च पर है और दो अमात्य मन्चिकाओ पर। समय दिन का तीसरा पहर]

राजा—वडी वात है कि अयोध्या के ऊपर किसी शत्रु ने आक्रमण नही किया नही तो इन पणियो और व्याजभोगियो पर पहले विपद का पर्वत टूटता। अस्तु, मैं फिर भी इनकी रक्षा करूगा, परन्तु मैं इनकी स्वार्थसाधना के क्रम मे दासो और शूद्रो पर अत्याचार नहीं कर सकूंगा।

एक अमात्य—उद्दण्डता के उस प्रदर्शन मे ये भी थे, और, अधिक उपद्रव कर्मकारो के साथ इन्ही लोगो ने किया कराया।

राजा—उपद्रवकारियो का वर्ग अपने स्वामियो के सिखापन और सकेत पर चल रहा था। उनके हाथो के ये अस्त्रमात्र थे। दण्डिको ने उन्हें दण्ड भी वहा का वहीं दे दिया। अब मेरे मन में उनके प्रति घृणा नहीं है।

दूसरा अमात्य—परन्तु वे अभी तक भभक रहे हैं। आचार्य मेघ के अनुयायी उन्हें भडका रहे हैं।

राजा—(ग्लानि के साथ) आचार्य मेघ! करले वह अपनी मनमानी। समिति का अधिवेशन छ महीने उपरान्त होगा। अनेक वुद्धिमान और वहुश्रुत उसमें आयेंगे। विना राजा की उपस्थिति के समिति का अधिवेशन ही क्या। मैं उसमे जाऊगा और समिति को सब वातें समझाऊँगा। तुमने उस दिन सभा मे प्रबलता और औचित्य के साथ वात नहीं कर पाई। वह तो पुरोहित धीर, गम्भीर और विद्वान है, उन्होंने सभा का सचालन अच्छा किया। उद्वाहिका में भी लगभग सभी विवेकी सदस्य हैं।

पहला अमात्य—आर्य, अब तो इस घडी समस्या दुर्भिक्ष और अभाव का सामना करने की है। राज-भाण्डार मे अन्न इतना नही है कि अगले छ महीने पीडित जनता का पालन किया जा सके। वर्षा के कोई लक्षण दीखते नहीं।

राजा—युद्ध और अकाल के समय विशेष संग्रह की विधि स्मृति मे है। दीर्घवाहु सदृश महाशालो के अन्नागारों में प्रचुर मात्रा में धान्य होगा उनसे संग्रह किया जाय।

दूसरा—सभी महाशाल रुष्ठ हो जायेंगे और आचार्य मेघ के अनुवर्ती हो जायेंगे।

राजा—जिन वैश्यो और शूद्रो से महाशाल अपने विशाल निवर्तनो की खेती कराते हैं उन्हें उपज का केवल सप्तांश देते हैं। मैं अधिक देता हूँ। कृषक मेरा साथ देंगे न कि उन महाशालों का।

पहला—परन्तु आर्य महाशाल योधा हैं, हमे यह नही भूलना है।

(राजा सोचने लगता है)

राजा—(सोचकर) वैसे भी जब तक खेतो में अन्न नहीं आता इस प्रश्न का उठाना अनुचित होगा। (झटकासा खाकर) तब पणियो और अन्नचोरो को देखा जाय। उपद्रव वहुत करके इन्ही लोगो ने करवाया है।

पहला अमात्य—यह ठीक है आर्य।

दूसरा अमात्य—इस वर्ग के साथ वैसा व्यवहार ठीक नहीं होगा महाराज। जैसे पर्वत को फोडने से जल नहीं निकलता, नदी को उल्टा प्रवाहित करने से सरोवर नहीं वनते, उर्वरा भूमि के ऊपर के स्तर को खोदकर फेंकने और फिर गर्त मे कृषि करने से अन्न उत्पन्न नहीं होता, और अपने करतल को अपने ही करतल के घिसने से ज्वाला उत्पन्न नही होती और न इस क्रिया को यज्ञ की संज्ञा दी जा सकती है वसे ही इन वडे वडे करदाताओ की धनराशि को राजकोष में खींचने से जनपद की सुखसम्पदा में उन्नति या वृद्धि नही होगी।

(राजा फिर सोचने लगता है)

पहला अमात्य—इस वर्ग ने अभाव से लाभ उठाकर व्याज की दर वढा दी है। अन्न तो छिपाये हुये हैं ही। वार्षिक पन्द्रह प्रतिशत से वढ़ाकर व्याज दो, तीन, चार, पाच प्रतिशत प्रतिमास तर्क कर दिया

है। द्विजो से पन्द्रह प्रतिशत प्रतिवर्ष तक ले सकते थे, परन्तु अब तो पन्द्रह प्रतिशत प्रतिमास से भी अधिक लेने लगे हैं !!

दूसरा—द्विज जब शूद्र कार्य करेंगे और ऋण की आवश्यकता मे पड जायेंगे तब उनको साधारण व्याज और चक्रवृद्धि भी देना ही पड़ेगा।

राजा—विवाद न करो। मैंने एक बात सोची है। जन-कल्याण हेतु मैं स्वय पणियों और वणिको से बहुत बडा ऋण लूगा।

दूसरा—(चकित सा) आर्य, ऋण।

राजा—हा अमात्य। इन वर्गों से ऋण पर स्वर्ण, रजत, अन्न और गोजन लेकर कुल्यायें खुदवाऊगा, सरोवर बधवाऊँगा, गोमती, बाहुदा और सरयू नदियों पर सेतु बँधवाऊँगा जिनके ढलानो मे सदा अखण्ड जलराशि भरी रहेगी जिससे कुल्याओं को अमोघ जल मिलता रहेगा। फिर वर्षा हो या न हो कृषि-कार्य कभी नही रुक सकेगा।

पहला अमात्य—परन्तु देव, इतना ऋण सुलभ नही होगा।

दूसरा—मुझे असम्भव दीखता है, महाराज। ऋण-व्यवसायी पहला प्रश्न यह करेंगे कि राजकोष में एकत्र किया हुआ स्वर्ण और रजत कहां गया ? वे ऋण नहीं देंगे। कह देंगे हमारी गाठ मे नहीं है।

राजा—तब अपने युक्तो को उनके घरों मे भेजकर शोध और अनुसन्धान न कराया जावेगा।

(दोनो अमात्य एक दूसरे का मुह देखकर चुप रहते हैं)

राजा—हमारा अन्नागार तो दिन दिन सकुचित होता ही जा रहा है, स्वर्ण और रजत क्षीण हो जाने पर फिर आपत्काल के लिये कुछ भी नहीं बचेगा। (एक क्षण सोचने के उपरान्त यकायक) एक बात सूझी है। (रुक कर) अच्छा तुम लोग बतलाओ वर्तमान समस्याओ के प्रतिरोध के लिये क्या करना चाहिये ?

पहला—मैं एक और बडा यज्ञ करने के लिये निवेदन करता। सम्भवत उससे इन्द्रदेव सन्तुष्ट हो जाते, परन्तु यव और गोघृत दुर्लभ हो गये हैं। जो यज्ञ चल रहे हैं उन्हीं की साधना कठिन पड रही है।

दूसरा—मैं कहता कि कुछ न करके निकटवर्ती वनो के फलमूलो को सर्वव्यापी रूप से सहस्त्र करो द्वारा सग्रह करवाया जावे, और लक्ष्य-करो से जनपद की त्रस्त जनता को बाँट दिया जावे, परन्तु इससे वनो का नाश होना सम्भव है और स्थान-स्थान मे फैले हुये आश्रमवासी ऋषि और मुनि तुरन्त निषेध कर देंगे, और, चाहे कुछ हो जाय हम कोई भी इन्हें तो प्रतिकूल नही कर सकते।

राजा—जगलो के अधिकाश भाग पर मेरा अधिकार है उसमे आखेट खेलने का, गाव वालो से विना पारश्रमिक के आखेट में हाका कराने का अधिकार मुझे परम्परा ने दिया है। चाहू जो तुमने कहा वह करवालू, परन्तु वैसा नही करू गा। मैंने सोचा है कि—

(ललित का सहसा प्रवेश)

ललित—आर्य, मैं आखेट के लिये जाना चाहता हूं। जो क्रिया उस दिन शूद्र कपिञ्जल ने बतलाई थी उसके द्वारा अब लक्ष्यवेध अचूक रहता है। व्याघ्र और शूकर का भेद करना चाहता हूं।

राजा—वत्स, मैं अभी आखेट की ही चर्चा कर रहा था। (हँसकर) क्या आज फिर खडे सुडे सुन रहे थे ?

ललित—नहीं देव, उस दिन की बात और थी। आप आखेट की चर्चा कर रहे थे तो क्या आप भी वन की ओर चलेंगे ?

राजा—नही तो।

ललित—तो मुझे आज्ञा दीजिये, देव। मैं अपने कुमार पूग के कुछ उत्साही साथियो को ले जाऊंगा। वे मेरी ही आयु के हैं और हमारे पूग के पुराने सदस्य हैं।

राजा—(हँसकर) ओ हो ! तुम भी बहुत पुराने हो न !! अच्छा, प्रबन्ध करा दूंगा। परन्तु इन दिनो नहीं, कुछ काल उपरान्त। जाओ।

(ललित जाता है)

राजा—बहुत ही होनहार है यह, और बडा प्यारा। एक चिन्ता इसकी भी मुझे आजकल कभी-कभी सता देती है। बिना पूरी और ऊची शिक्षा पाया हुआ कुमार राज्याभिषेक का अधिकारी नही होता और न उसकी गणना द्विजो मे हो सकती है। ऐसे को तो कोई सुजात भी नहीं कह सकता। बिना किसी ऋषि के आश्रम में प्रवेश किये यह अनार्य हो जायगा। इस सुन्दर कोमल बालक का प्रवेश कहाँ कराऊँ यही सोचा करता हूँ। (एक क्षण चुप रह कर) देखा जायगा। वर्तमान परिस्थिति के सम्भालने की बात कह रहा था मैं। मैंने यह सोचा है कि अपने कोष का स्वर्ण रजत इत्यादि कुल्या और सरोवर खुदवाने पर व्यय करूँ। यह मेरा त्याग होगा। कर्मकार यह त्याग करें कि साधारण प्रचलित पारश्रमिक की अपेक्षा हम से आधा लें। उनको श्रम का महत्व समझाना तुम्हारा कर्तव्य है।

दोनों—जो आज्ञा।

राजा—उन से कोर्वी या विष्टी नहीं कराई जा रही है यह उन्हें समझ लेना चाहिये। गोप को छ गायें चराने का पारश्रमिक एक गाय का दूध और सौ का झुण्ड चराने के परिवर्तन में एक जोडी गायो की मिलती है। शिल्पियो और कर्मकारों को शिल्प के लाभ का सप्तांश मिलता है। इसके अनुपात से उन्हे कुछ ही कम का पडता बैठेगा। उन्हे तृप्त रहना चाहिये। क्या कहते हो ?

एक—
दूसरा— } (आगे पीछे) जो आज्ञा।

राजा—मैंने निश्चय कर लिया है। किसी भी उद्दण्ड प्रदर्शन का मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पडेगा। (एक क्षण रुककर) प्रदर्शन होगा

ही क्यों ? जनपद मे जब मेरी इस योजना का समाचार फैलेगा तब उसे सन्तोष प्राप्त होगा। मैं अपने आखेटको से ललित के आखेट का प्रबन्ध कराने जाता हू नहीं तो वह यहा फिर दौडा आवेगा। तुम भी जाकर अपना काम देखो सभालो।

(वे सब जाते हैं)

पांचवां दृश्य

[नैमिषारण्य का एक भाग। यहा से वन सघन होता है। समय दोपहर के लगभग। आश्विन के कृष्ण पक्ष की ऋतु है। वन में कुछ वर्षा हुई है। इस कारण खुले से स्थानों में ऊंचा घास है और वायु उष्ण। सघनवृक्षो की छाया के नीचे छोटे छोटे से पौधे हैं घास नही है। वहा वायु अपेक्षाकृत शीतल है। वृक्ष पुष्पाच्छादित हैं और सारा वातावरण दूर से देखने मे सुन्दर, निकट से एकान्त सुनसान और जी को उकताने वाला। नाना भाति के पक्षियो की चू चूं हो रही है। शस्त्र सज्जित ललित आखेटक वेश में आता है। उष्णीश, द्रापी, जांघिया और पैर में जूते। सब मूंगिया रंग के। उसके कुछ साथी पीछे पीछे चुपचाप आते हैं। उनका वेश भी उसी का जैसा। ललित गले मे मुक्ता माला डाले है, केवल यह अन्तर है। वे आकर एक खुले स्थान में ठहर जाते हैं और सकेतों मे एक दूसरे से कहते हैं कि हांका करने वाले न जाने कहा रह गये हैं। उनके मुख पर थकावट और क्षोभ के चिन्ह हैं। उनमे धीरे-धीरे बातचीत होने लगती है]

ललित—ग्रामीण बहुत धृष्ट हो गये हैं। उपेक्षा करने लगे हैं।

एक साथी—ताडना देनी पडेगी।

ललित—भोर से अभी तक कितने भटके हैं। कुछ भी तो हाथ नहीं लगा।

एक साथी—वन के निकटवर्ती ग्रामों मे रहने वाले लोग पशुओ को मार के खा गये हैं।

छटवां दृश्य

[नैमिषारण्य का दूसरा भाग । यहा वन सघन है । समय दिन के दोपहर के लगभग । वृक्षो के समूह से घिरी हुई एक ऊँची स्वच्छ टेकडी है । कपिञ्जल आसन लगाये समाधिस्थ है । उसके निकट ही उसकी छोटी सी पर्णकुटी है । वृक्षो की झुरमुट में से सूर्य की कुछ किरणें कपिञ्जल के माथे और ठोडी को दमक दे रही हैं । लगता है जैसे रविरश्मियाँ कपिञ्जल के ध्यान के साथ खेल रही हो । जङ्गल से टेकडी की ओर कुछ पगडण्डियाँ आई हैं । एक इनमे कुछ चौडी है जो दूर तक चली गई है । जङ्गल के एक सिरे पर जो इस टेकडी से कुछ दूर है, वेद और कुल्लक आते हैं । उनकी झोलियो मे थोडे से फल हैं जिन्हे उन दोनो ने इसी वनखण्ड से सग्रह किया है]

वेद—(सामने की चौडी पगडण्डी को देखकर उल्लास मे) हे अरण्यानी, तुम देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो जाती हो, इतनी दूर चली जाती हो कि दिखलाई ही नही देती ! तुम क्यो नही गाँव मे जाने का मार्ग पूछती हो ? इस बडे विपिन में अकेली रहने में क्या तुम्हें डर नहीं लगता ? कुल्लक, यह वन विभूति किसी को नहीं मारती । यदि व्याघ्र चोर आदि यहा न आवें तो कोई भय भी नही प्रत्युत यहाँ के फल खा-खाकर भलीभाँति कालक्षेप किया जा सकता है । (चिडियो की चीं-ची सुनकर) इस गहन अरण्य मे कोई जन्तु बैल की भाति बोलती है, कोई ची ची करके मानो उसका उत्तर देता है—जैसे वीणा के घट घट मे बोलकर वनदेवी का यश गाते हो ।

कुल्लक—(आनन्दमग्न) इस विपिन के किसी छोर मे गायें चरती हैं और कही लता गुल्म आदि के निवेश से दिखलाई पडते हैं ।

वेद—मैं तो कहूँगा कि स्थापत्य और वास्तुकला वाले इन्ही का अनुकरण करके तीन तीन तल्ले वाले निवेशो और भवनो का निर्माण करते हैं । टाँकी और हथोडे से पत्थर पर वनश्री को अङ्कित करते हैं ।

कुल्लक—(अपनी धुन में) वन के उस दूर भाग में जो अपने आश्रम के निकट है कोई व्यक्ति गायों को बुलाता है, कोई काठ काटता है, कहीं स्त्रिया गाते गाते फलमूलों का संग्रह करती हैं।

वेद—और प्रात काल के समय जब वे ऊषा का स्तुति-गान करती हैं तब लगता है जैसे ऊषा हमारे लिये दोनो हाथो ओज बांटती चली आ रही हो और अपनी दानशीलता पर स्मित का कुसुम लगा रही हो।

कुल्लक—यहां इस समय आरण्यानी अपना सौरभ मुक्त होकर वितरित कर रही है।

वेद—इसी सघन कुंज में फल मिलेंगे। वहा आसपास के तो उजड चुके हैं। (कपिञ्जल की टेकडी को देखते हुये) वहां कपिञ्जल तपस्या कर रहा है।

कुल्लक—गुरुदेव उसे स्वयम् यहां तक पहुचाने आये थे।

वेद—उन्होंने कपिञ्जल में जो कुछ भी देखा हो, मुझे तो ऐसा कुछ नहीं दिखलाई पडा। अब ध्यानमग्न होकर गुरुदेव के आशीर्वाद से कुछ पा जावे तो कह नहीं सकता। वैसे वेद, वेदाङ्ग, व्याकरण, ज्योतिष, कला, आयुर्वेद, गणित इत्यादि कुछ भी तो नहीं पढा उसने। हा धनुर्वेद मे अवश्य उसकी गति है।

(दूरी पर हांके शब्द का सुनाई पडता है)

कुल्लक—यह क्या? (कान लगाकर) कोई आखेट कर रहे हैं। इस वन में भी आखेट! किसने दुस्साहस किया?

वेद—यहा से चलकर किसी ऊंचे वृक्ष को ढूढ लें और उस पर चढकर देखें। फल संग्रह फिर करेंगे।

(दोनों जाते हैं)

सातवां दृश्य

[नैमिषारण्य का एक और भाग । यहा भी वन सघन है । एक भाग कुछ खुला हुआ है । समय दिन के दो पहर के लगभग]

(नेपथ्य मे दूरी पर हाके का शब्द सुनाई पडता है और निकट शूकर की हुङकार और फुत्कार का । कुछ क्षण उपरान्त किसी के आहत होकर गिरने और 'बचाइयो ! बचाइयो !!' की ध्वनियां सुनाई पडती हैं । कुछ ही क्षण पीछे किसी के चिल्लाने—'मैं आया' और दौडने का शब्द होता है । कोई दौडते हुये कहता आता है—'हट ! भाग !! दूर हो !!!' फिर किसी पशु के दूर भागते जाने की खुरियों की खडखड होकर लुप्त हो जाती है । लोहू लुहान ललित आतुरता के साथ गिरता-पडता लडखडाता हुआ आकर उस खुले स्थान मे धराशायी होकर हाफने लगता है । उसके मु ह से धीरे से निकलता है—'हा पिता—आ' और वह अचेत हो आता है । कुछ क्षण उपरान्त कपिञ्जल व्यग्रता के साथ आता है । वह लगोटी के ऊपर एक छोटा सा परिधान पहिने है जिसका एक छोर घुटने तक लटक रहा है । ललित को निकट से देखकर पहिचान लेता है)

कपिञ्जल—राजकुमार ! राजकुमार !! (ललित अचेत है)

(कपिञ्जल अपने परिधान के लटकते हुये छोर मे से एक लम्बा टुकडा फाडता है । फिर उसके दो टुकडे कर लेता है । एक से घुटने से बहने वाले रक्त को पोछता है, दूसरे से घाव को बांध देता है । इतने में कुछ हाके वालो के साथ उनका सचालक आ जाता है । कपिञ्जल ललित पर झुका हुआ है)

सचालक—अरे ! इन्हें तो बडी चोट आ गई है !!

कपिञ्जल—(थोडा-सा सिर उठाकर) बहुत नहीं है, पर बालक ही तो हैं । इसके लिये इतनी ही बहुत है ।

(सचालक और हाके वाले कपिञ्जल को नत मस्तक प्रणाम करते हैं। वह प्रति नमस्कार करता है)

सञ्चालक—योगीराज ! आप यहा ! !

कपिञ्जल—(खड़े होकर) मैं योगीराज क्या योगी तक नही हूँ। योग का छोटा सा विद्यार्थी भर हूँ।

(ललित पानी पीने के लिये होठ फडकाता है)

कपिञ्जल—राजकुमार के मुह में पानी डालो।

(एक हाके वाला पानी पिलाता है। दूसरा एक वृक्ष की टहनी के पत्तो से उसके मुँह पर पङ्खा झलता है)

सञ्चालक—आपने वचा लिया इस वालक को। हम लोग तो दूर थे। (निपथ्य मे पैरों की आहट)

कपिञ्जल—(जहा से आहट आई है उस ओर देखते हुये) मैंने कुछ नहीं किया।

(वेद और कुल्लक का प्रवेश)

वेद—हमने देखा है। आपने रक्षा की, नही तो यह वालक राजकुमार निस्सन्देह मारा जाता। नमस्कार वन्धु कपिञ्जल।

(कुल्लक भी उसे नमस्कार करता है। वह विनीत भाव से प्रतिनमस्कार करता है)

कपिञ्जल—कहाँ थे ?'

कुल्लक—एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़े चढे देख रहे थे। शूकर वडा था। घायल होकर चला गया।

वेद—फल मूल सग्रह करने आये थे। अतिकाल हो गया, अव जावें। इस वालक का क्या होगा ?

कपिञ्जल—(हाके वालों से) इसे फूल की भाति उठाकर ले जाओ और जहा से आया है वहीं पहुचा दो। मेरी कुटी पर कोई न आवे। इसकी अच्छी सम्भाल करना।

सञ्चालक—इसके कुछ साथी भी हैं। उनको खोजना पडेगा।

कपिञ्जल—अवश्य।

(वे सब ललित को उठा ले जाते हैं)

कुल्लक—आप तो हम लोगों से आगे बढ़ गये।

कपिञ्जल—नही तो। पूज्य गुरुदेव ने जो बातें बतलाई थी उनमें से थोडी–सी ही गाठ मे बाध पाई। उनकी पवित्र वाणी से निकला हुआ केवल एक मन्त्र स्मृति मे आक लिया है–तन्मे मन शिव सकल्पमस्तु मेरा मन कल्याणकारी सकल्प वाला हो। अब मैं चलूँ।

वेद—हा भाई। आपको समाधि भग करके आना पडा था।

कपिञ्जल—बन्धुवर, समाधि तो क्या परसेवा मे यदि शरीर को भी भग्न करना पडे तो कोई बात नही।

वेद—गुरुदेव से कुछ निवेदन करना है?

कपिञ्जल—उनके चरणो मे मेरा बारम्बार साष्टाग प्रणाम।

वेद—(हंसकर) कह तो दूंगा, परन्तु स्वय वैसी क्रिया करने में तो मेरा शरीर चूर–चूर हो जायगा।

(वेद और कुल्लक हँसते हुये उसे नमस्कार करके जाते हैं। कपिञ्जल का मुस्कराकर प्रति नमस्कार करते हुये प्रस्थान)

[पटाक्षेप]

तीसरा अङ्क



पहला दृश्य

[अयोध्या के राज-भवन का अन्तःपुर। रानी ममता एक चौकी पर बैठी हुई वीणा वाद्य पर गा रही है। ममता दृढमति की स्नेह स्निग्ध नारी है। समय दोपहर के लगभग, ऋतु जाडे की। उसकी चौकी से कुछ नीचे बैठी एक परिचारिका मृदङ्ग से ताल दे रही है और दूसरी मञ्जीर बजा रही है। ममता माथे पर स्वर्ण-जटित पट्ट बाधे है, कानो में कर्णशोभन, गले मे मणि मुक्ताहार, हाथो मे सोने की चूडियाँ और वलय तथा पैरो में नूपुर पहिने है। कौषेय की रगीन कचुकी और साडी शरीर पर। दोनो परिचारिकायें भी आभूषण और कौषेय के वस्त्र पहिने है, परन्तु बहुत कम मूल्य के। ममता की साडी के किनारो पर सुनहली पेशकारी का काम है।]

गीत (भीमपलासी राग में विलम्बित लय पर)

ज्योतिर्मय करदो प्रकाश

जगती का अन्धकार कर दूर, सत पथ का गामी बना उसे,
विपदा, दुख, मत्सर द्वेष-भाव करदो जनमन से चूर चूर,
सबके स्वामी हे दयासिन्धु कट जावे जन की कठिन पाश,
ज्योतिर्मय करदो प्रकाश

(गीत की समाप्ति पर रोमक आता है। वे तीनो उठ खडी होती हैं। परिचारिकायें वाद्यो को लेकर चली जाती हैं)

ममता—इस घडी आर्य कुछ अधिक चिन्तित दिखलाई पडते हैं। समिति का अधिवेशन अभी दूर है और मुझे आशा है कि आपको उसमे विजय प्राप्त होगी।

रोमक—देवी, मेरी चिन्ता का कारण यह विषय नहीं है। कारण ललित है।

ममता—(कुछ भयभीत स्वर मे) क्या उसने कोई उपद्रव किया ?

रोमक—सो तो बालक है, कुछ न कुछ करता ही रहता है। जनपद का एक अल्पाङ्ग उसके प्रतिकूल हो गया है तो एक बहुत बडे भाग को वह बहुत प्रिय हैं। आखेट मे घुटने के आहत होने के उपरान्त उसे मृगया और भी अधिक मोहने लगी है। उसकी शिक्षा का क्रम टूट गया है। यहा कोई बडा विद्वान कुशल उपाध्याय दिखलाई नही पडता जो उचित अध्यापन कर सके। सोचता हू किसी ऋषि के आश्रम में भेज दू, परन्तु ऐसा कोई ऋषि का ध्यान नहीं आ रहा है जो इसे अपने आश्रम मे ले ले, क्योंकि अब सोलह वर्ष का हो गया है।

(ममता विचारमग्न हो जाती है रोमक उसके उत्तर की प्रतीक्षा में कुछ और चिन्तित हो जाता है। ममता लक्ष कर लेती है)

ममता—देव, एक ऋषि हैं ऐसे।

रोमक—कौन हैं, देवी ? कहाँ हैं ?

ममता—अपने इसी नैमिषारण्य मे—धौम्य ऋषि।

रोमक—हैं तो सभी शास्त्रो और विद्याओ के पारङ्गत, परन्तु हैं कठोर। उनका अनुशासन कैसे सह पायगा यह कोमल किशोर ?

ममता—देव! क्षत्रिय होकर ऐसी बात करते हैं! विद्या और शक्ति पुष्पो की कोमलता और सुगन्धि की वाहिका मे बैठकर नही आती, उनके वाहन नियम सयम और आज्ञा पालन हैं। उन्हें वही ग्रहण कर पाता है जिसने सजग होकर मानस के ओज को बढाया हो और जो

अयस की असि धार को अपनी वज्र मुष्ठि से मोडने का सकल्प कर चुका हो। इसी मे उपनीत कीजिये (कठ कम्पित हो जाता है जिसे वह तुरन्त सम्भाल लेती है) चिरञ्जीव ललित को। रह गया उसकी आयु का प्रश्न सो महर्षि धौम्य सदादर्शों के अनुशीलन हेतु परम्परा के छोटे-मोटे नियमों का उल्लघन करने मे कभी नही हिचकते। वे इसके नाम को सार्थक करने मे समर्थ होंगे।

रोमक—देवी तुमने ठीक कहा। उसे एकाध दिन मे रथ मे बिठला-कर स्वय नैमिषारण्य मैं ऋषि धौम्य के आश्रम में छोड आऊगा।

ममता—(मुस्कान के साथ) एकाध दिन मे क्यों ? (फिर स्वल्प कण्ठ कम्प में) आज ही ले जाइये। शुभ को शीघ्र ही सम्पन्न करना कर्तव्य है।

रोमक—(कुछ क्षण मे निश्चय करके) अच्छा देवी। मैं उसे तत्पर करूँ।

ममता—आप रथ, सारथी इत्यादि का आयोजन कीजियेगा। तत्पर तो उसे मैं करूगी।

(रोमक जाता है)

(ममता परिचारिका को बुलाने का प्रयत्न करती है, परन्तु उसका गला रुध गया है। प्रयास करके अपने को सयत करता है। परिचारिका को द्वार से सकेत करके बुलाती है। परिचारिका आ जाती है)

ममता—राजकुमार को बुला लाओ। कहा हैं ?

परिचारिका—भीतर के एक कक्ष मे शयन कर रहे हैं।

ममता—(कुछ रूखे स्वर मे) लिवा लाओ।

(परिचारिका जाती है। ममता थोडा सा टहल कर चौकी पर बैठ जाती है। विक्रम आता है और हाथ जोडकर खडा हो जाता है)

ममता—तुमको एक अत्यन्त आवश्यक काम के लिये बुलाया है। (खडी होकर उसके सिर पर हाथ फेरती हुई) वत्स—(उसका कण्ठ काप जाता है)

ललित—माता, आदेश हो। आपका ललित प्राणपण से पालन करेगा।

ममता—तुम अभी कोमल हो, परन्तु—

ललित—मेरे बाहुओ को टटोलें माता। व्यायाम करते-करते मान्सपेशिया और स्नायु लोह समान हो गये हैं।

ममता—(आँख मे आये हुये एक आँसू को शीघ्रता से पोछकर हँसती हुई) ओ हो सहस्रबाहु के समान बली हो गया है न तू।

ललित—तो माता आप मुझे कोमल न कहा करें और पिता जी को भी निषेध करदें। मैं वैसा दीनहीन तो नहीं हू जैसे छोटे-छोटे बालक होते होंगे।

ममता—अच्छा तो सुन। तुझे धौम्य ऋषि के आश्रम मे शिक्षा-प्राप्ति के लिये दीर्घ प्रयास करना पडेगा।

ललित—अरे बस ! इतनी सी बात !! इसी घडी जाने के लिये प्रस्तुत हू। पिता जी से पूछना पडेगा।

ममता—उनसे बात हो चुकी है। आज ही प्रस्थान करना होगा।

ललित—(भोली हँसी के साथ) हू, मुझे नही बतलाया !

ममता—अभी अभी निश्चित हुआ है। तुमको महाराज अपने वेगगामी रथ में बिठला ले जायेंगे। मैं तुम्हारा साज सजाऊँगी। तुम्हारी कटि में मुञ्ज-रज्जू मैं बाँधूँगी। (यकायक हिलकर चुप हो जाती है)

ललित—अरे ! आप तो माता जी विषण्ण हो रही हैं। मुझे वन और उपवन वैसे ही बहुत भाते हैं, आश्रम का प्रवास बहुत रुचेगा।

ममता—वहाँ जीवन बहुत कठोर होता है।

ललित—होता रहे। शिक्षा प्राप्ति के लिये साधना तो करनी ही पडेगी।

(ममता परिचारिका को बुलाती है उसे मूँज की एक रस्सी लाने को कहती है। वह चली जाती है)

ललित—(हँसकर) मैं अपना धनुषवाण साथ में ले जा सकूँगा न ?

ममता—पागल, वहाँ अपने अस्त्र-शस्त्र नहीं ले जा सकोगे। गुरुदेव देंगे। तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र होंगे सत्याचरण और सत्यवाद। वत्स, सत्यवादी अजेय हो जाता है।

(परिचारिका मूंज की एक रस्सी लाकर ममता को देती है)

ललित—तो ये हार, वलय इत्यादि उतारने पड़ेंगे।

(हँसते हँसते उतार देता है)

ममता—(अपनी भावना को साध लेती है और उसकी कटि में मूंज की रस्सी बांध देती है) अपने स्वास्थ्य की चिन्ता करना, जो अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं करता वह पापी है।

ललित—अभी तक यही करता आया हूं मां, और आगे भी करूंगा।

(हंसता है)

ममता—गाली देना पाप है, इसे न भूलना।

ललित—(गम्भीर होकर) कभी नही भूलूंगा।

ममता—जैसे ब्राह्मण बुद्धि, वैश्य राष्ट्र सम्पत्ति के, और शूद्र श्रम की पवित्रता के प्रतीक हैं वैसे ही क्षत्रिय बलिदान की महत्ता के हैं।

ललित—माता, मुझे छुटपन से सिखलाया गया है कि क्षत्रिय को महान आदर्श पर बलि हो जाने के लिये प्रस्तुत रहना चाहिये। यह उसका धर्म है।

ममता—और देखो चिरञ्जीव, अहकार से सदैव बचना। अहंकार अध पतन का द्वार है।

ललित—सदैव स्मरण रक्खूंगा, मां।

(ममता के चरणों मे सिर रख देता है। वह अञ्चल से अपने आंसू पोछती है)

ममता—(गद्‌गद् कण्ठ से) परिचारिका कुमार का वह कुर्तक उठा लाओ जिस पर मैंने कल पेशकारी की थी। उठो वत्स। (ललित खड़ा हो जाता है। उसके सिर पर हाथ फेरती हुई) तुम ऋषि के आश्रम से बहुत बहुत अच्छे बनकर आओ। इन्द्र, अग्नि, वरुण तुम्हें सूपो भर भर सुख दें।

ललित—(ममता का हाथ पकडकर) सूपो भर सुख को रक्खूगा कहा माँ ? (हसता है)

ममता—चल हट। जनपद की जनता को बाटते रहना। इक्ष्वाकु के वश की रीति जो चली आई है। वत्स, जैसा तेरा नाम हैं वैसा ही बन।

ललित—(ऊपर की ओर मुह करके हाथ जोडे हुये) परमात्मा मुझे आपके आशीर्वाद का पात्र बनावे।

(परिचारिका कुर्तक लाकर ममता को दे देती है)

ममता—यह कुर्तक लो। जब लौटकर आओगे अनेक बहुमूल्य बना बनाकर पहिनाऊँगी।

(दूसरी परिचारिका आती है)

परिचारिका—नैमिषारण्य की यात्रा के लिये रथ इत्यादि प्रस्तुत हैं। महाराज ने कुमार को बुलाया है।

ममता—(कण्ठ को स्थिर रखने का प्रयत्न करती हुई) चलो वत्स, मैं तुमको रथ तक पहुँचा दूँ।

(आगे ललित पीछे ममता और उसके पीछे परिचारिकायें जाती हैं। ममता अञ्चल से अपनी आँखें पोछती जाती हैं। ललित तना हुआ सा है मानो किसी विनोद के लिये यात्रा कर रहा हो)

दूसरा दृश्य

[नैमिषारण्य का एक भाग। अँधेरी रात का अवसान हो रहा है। प्रात काल की पौ फटने को हो रही हैं। चार स्त्रिया ऊनी वस्त्र ओढे झोलिया लिये आती हैं]

एक स्त्री—अभी अंधेरा है, परन्तु पौ फट रही है।

दूसरी—आज कुछ शीघ्र निकल पडी घर से—

तीसरी—दूध दोह लिया और चली आई—

चौथी—आकाश मे पक्षी उडने लगे। (चीं चीं के रव होते हैं) ऊषा की अगवानी के गीत गाने लगे हैं।

एक—शुभ्रवर्ण ऊषा, तुम सारे उजियालो की रानी हो, सब से अधिक सुन्दर मजुल और उज्वल। तुम्हारे पदार्पण करते ही दो पाये, चौपाये और पक्षी अपने अपने काम मे सलग्न होने लगे हैं।

दूसरी—ऊषा, अविलम्ब अन्धकार का नाश करके जगत को उद्भासित करदो, हम फल सग्रह करके अपने दूसरे कार्य देखें।

तीसरी—वह देखो, स्वर्ग की बेटी दीप्यमान वस्त्र पहिने प्रात. के मस्तक पर रोरी लगा चली है। थोड़े समय मे वह सविता को बुलाकर शीत को भगा देगी।

चौथी—धन्य हो ऊषा! नित्य ऐसे ही ओज, साज, सलोनेपन और स्मित के साथ हम सब को वर्चस्व बाटने के लिये आती हो। अनादिकाल से ऐसा करती आई हो और अनन्त समय तक करती जाओगी। हमारे पुरखों ने तुम्हारे दर्शन से अपने को कृतकृत्य किया हमको सजीव करती हो, जगाती उठाती हो और आगे आने वाली पीढियों को भी चेतना और आलोक देती रहोगी। देती रहना भला।

एक—जैसे ऊषा दूर्वादलो को ओसकण और गायो को चरने के लिये स्वादिष्ट और बलप्रद चारा देती है वैसे ही ऋषियो, ज्ञानियो और कर्मकारो को सत्य और महानता भेंट करती है। (प्रकाश बढता है) अहा! अहा! अब वृक्ष पल्लवो के भीतर छिपी हुई बडी बडी कलिया दिखलाई पडने लगी हैं। जैसे मुस्करा मुस्कराकर ऊषा से कुछ कह रही हो (नेपथ्य मे गाय के रभाने का शब्द) वह देखो गाय ऊषा की स्तुति कर रही है।

दूसरी—ऊषा के सहस्त्र वरद हस्त हैं। इधर वह हमको वरदान दे रही है, उधर सूर्य का स्वागत करने में भी तल्लीन है।

तीसरी—(प्रसन्न होकर) हाँ, यह वही ऊषा तो है जो नित्य अमिट नव यौवन को धारण करके अपने प्रभाव से निगूढ अन्धकार को भगा देती है, सूर्य के सामने जाने में उसे कोई लाज नही आती।

चौथी—(हँसकर) और नर्तकी की भाँति सूर्य को कभी यह रग और कभी वह रग भी दिखलाती है।

पहली—हाँ हाँ ऊषा किसी के लिये कुछ और किसी के लिये कुछ कर रही है, फिर भी किसी का पक्षपात नही करती, जो अब भी आडे तिरछे पडे सो रहे होगे उनके कानों मे कूके देकर जगावेगी, किसी को यश करने, किसी को धन कमाने और अब अपने लाल होठो पर मोतियों जैसे दातो की दीप्तिमयी मुस्कानो द्वारा हमे तुम्हे फल सग्रह करने के लिये कह रही है।

(प्रकाश बढता है)

दूसरी—ठीक है उस ओर की कुञ्ज में चलो। वहा फल मिलेंगे, यहा तो नही हैं। (आहट लेकर) कोई आ रहा है।

(वे सब जाती हैं)

(दूसरी दिशा से रोमक और ललित का एक अमात्य और एक मार्ग-दर्शक के साथ प्रवेश। मार्ग दर्शक आगे है)

मार्गदर्शक—आर्य, यहा होकर चलिये।

रोमक—अब कितनी दूर है ऋषि धौम्य का आश्रम ?

ललित—चलते चलते ऐसा लग रहा है जैसे दोपहर बीत गये हो।

अमात्य—एक पहर रात रहे स्नानादि से निवृत्त होकर बसेरे वाले गाव से चले, जो यहा से बहुत दूर नही होगा, परन्तु अन्धकार के कारण धीरे-धीरे चल पाये।

ललित—अब कितने डग होगा आश्रम यहा से ?

मार्ग दर्शक—(हँसकर) राजकुमार अभी इतनी दूर तो भी है कि आप सब सूर्योदय के उपरान्त पहुच सकेंगे।

रोमक—पैदल और नगे पैर चल रहे हैं, इसलिये विलम्ब अवश्यम्भावी है।

मार्ग दर्शक—अब प्रकाश बढ गया है, चलने मे असुविधा कम होगी। जब तक आप आश्रम पर पहुचेंगे, ऋषि नित्य कर्म से निवृत्त हो चुकेंगे। आइये।

(सब जाते हैं)

(दूसरी दिशा से स्त्रिया फिर आती हैं)

एक—(बढते हुये प्रकाश की ओर हाथ उठाकर) अब ऊषा श्वेत परिधान ओढ़कर सूर्य को उज्वल प्रसूनो का अर्घ्य चढा रही है। पक्षी किलकारियाँ मार कर दिन भर की कुशल कामना के हेतु प्रार्थना कर रहे हैं।

(पक्षियो का कलरव सुनती हैं)

दूसरी—अभी जो यहा से निकल गये हैं वे कौन होंगे ? गाव के तो थे नहीं।

एक—इस समय यहा बाहर के जन ही आ सकते हैं। दुर्बल स्वर में एक पूछ रहा था—अब कितने डग होगा आश्रम यहाँ से ? जान पडता है शरण लेने आये हैं।

दूसरी—फल मूल का सहार बढेगा। (हँसती है)

एक—परमात्मा हमें बहुत देते हैं। कहीं वर्षा न हो तो यहा होती है। वृक्षो की सम्पन्नता पर ऊषा सम्पत्ति वितरित करती रहती है। हमारा विशाल वन अतिथियो का मुस्कराकर स्वागत करता है। हमें अकाल का भय नहीं है।

दूसरी—अरी वैसे ही कहा मैंने तो। (उजाला और बढता है) वह देख सहस्त्ररश्मि सविता वन की मुस्कानो के साथ खेलने के लिये पूर्व दिशा से बढते चले आ रहे हैं।

एक—तो अब और फल सग्रह करके घर चलो।

(सब जाती है)

तीसरा दृश्य

[नैमिषारण्य का दूसरा भाग। एक सघन वृक्ष की छाया मे धौम्य रोमक, ललित, रोमक का अमात्य, आरुणि, वेद और कुत्सक कुशासनो पर बैठे हैं। आरुणि, वेद और कुत्सक कुछ दूर और अलग। दिन चढ़ आया है]

धौम्य—(रोमक से) ललितविक्रम का आचार्यकरण करके मैंने उपनीति कर लिया और यह भी कह चुका हूं कि वेद, इतिहास, व्याकरण इत्यादि शास्त्रो के साथ वार्ताशास्त्र की भी शिक्षा दूगा क्योकि लोक जीवन का आधार ही वार्ताशास्त्र है। मैं इसे राजा होने योग्य बनाना चाहता हूं, परन्तु इसको मन्त्रविद ही नहीं आत्मविद भी बनाना होगा, जो इसे इतनी आयु तक भी नही सिखलाया गया है।

रोमक—गुरुदेव, आचार्य मेघ ने ढङ्ग से नहीं सिखलाया पढाया।

धौम्य—हो सकता है, परन्तु जिस वातावरण में यह पला है उसका कही अधिक दायित्व है।

रोमक—अब तो आपके चरणो में छोड रहा हूं।

ललित—गुरुदेव, मैं बहुत मन लगाकर सीखूगा।

धौम्य—विनय, प्रश्न परिप्रश्न और सेवा की साधना से ही विद्या आ सकती है। उसके लिये सयतेन्द्रिय और श्रद्धावान होना अनिवार्य है। (हंसकर) वेदो के मन्त्र कठस्थ कर डालने से कुछ नहीं होता है। जनता को कैसे सदा सुखी और सपन्न रक्खा जावे सदा ध्यान रखना पडेगा।

रोमक—धनुर्वेद की भी शिक्षा वाञ्छनीय है। गुरुदेव, ललित के लिये।

धौम्य—धनुर्वेद की भी शिक्षा दूंगा। वह तो जीवन का एक अङ्ग-मात्र होगी। सब से बड़ा आदर्श है उचित अनुपात मे शरीर, मन और आत्मा का समीकरण, इन तीनो का समन्वय। अपने निज को सन्तुलित रखना जीवन का दृढ सकल्प और ध्येय होना चाहिये। जो अपने को स्थिर रख सकता है वही दूसरों को सन्तुलित रखने में सब से अधिक सहायता दे सकता है—

ललित—गुरुदेव, मेरी माता ने चलते समय कहा था कि स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना—

धौम्य—(हँसकर) और यह भी कहा था कि मौज के साथ मनमाना भोजन करना और दिन रात सोना। (गम्भीर होकर) मैं तुम्हारी माता रानी ममता को जानता हूँ। उन्होंने छात्रीशाला में रह कर पर्याप्त शिक्षा पाई थी। उन्होने यह भी कहा होगा कि अहङ्कार अध पतन का द्वार है ?

ललित—कहा था, गुरुदेव।

धौम्य—तुम में वहुत है। परन्तु मैं उसका परिहार कर दूंगा। सत्य वोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय और प्रवचन में प्रमाद न करो। ये उपदेश तभी कार्यान्वित होते हैं जब अहङ्कार चला जाता है। तभी निर्भय भी रह सकोगे।

रोमक—एक प्रार्थना मुझे करनी है, देव।

धौम्य—कहो, आर्य।

रोमक—छ वर्ष से वर्षा नहीं हो रही है। यज्ञ पर यज्ञ किये, परन्तु अभी तक कुछ परिणाम नही हुआ।

धौम्य—श्वेतकि नाम का एक राजा हो गया है। उसने वारह वर्ष तक निरन्तर अग्निदेव को इतना घी और अन्न पिलाया खिलाया कि अग्नि को कुपच हो गया, कामला रोग मे ग्रस्त हो गये—मुह और शरीर पीला पड़ गया, यकृत-प्लीहा हो गया। औषधोपचार के लिये न जाने किस किस देवता की शरण मे गये। फिर उनको क्रोध जो दिलाया गया तो

उन्होने खाण्डव वन जला डाला। सुगन्ध और रोगहरण के लिये सीमा भीतर का यज्ञ उचित है, परन्तु अति सर्वत्र निषिद्ध है। उस घी और अन्न को दु खी जनो के मुंह में पहुचाते रहते तो कल्याणकारी होता।

रोमक—जो कुछ हुआ सो हुआ, अब क्या करूँ देव ?

धौम्य—समिति के अधिवेशन मे अपनी बात स्पष्टता के साथ व्यक्त करना और अपने अपराधो को निसकोच स्वीकार कर लेना।

रोमक—ऋषिवर, जहाँ तक स्मरण है मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।

धौम्य—सन्तुलित दृष्टि से जब ध्यान करोगे तब स्मरण मे आयगा। दूसरे के द्वारा अपराध बताये जाने पर मन मे नही बैठता। अपने आप मनन और चिन्तन करना, जब घोर प्रयास करने पर भी समझ मे न आवे तब दूसरो से पूछना। अभी तो आपको कोई आतुरता जान नहीं पडती। जनता कौन से अपराध बतलाती है ?

रोमक—जनता तो कुछ नही कहती ऋषिवर, मेघ ही कहते फिरते हैं कि राजा पापी है।

धौम्य—(बात टालकर, ऊपर की ओर देखते हुये) आप मेरे अतिथि हैं। भोजन का समय हो गया। कुटी में चलिये।

(धौम्य खडे हो जाते हैं। अन्य जन भी)

धौम्य—(अपने शिष्यो से) तुम लोग आसनें अपने साथ लेते आओ।

(वे लोग आसनो को उठा लेते हैं। ललित देखता रहता है। धौम्य लक्ष कर लेते हैं। सब जाते हैं)

चौथा दृश्य

[अयोध्या का सभा भवन। गद्दी वाले एक ऊँचे मञ्च पर समिति का ईशान (सभापति) बैठा हुआ है। उसके पीछे तकिया है। एक तकिया के सहारे थोडा सा पीछे सभा का सभापत्ति सोम पुरोहित बैठा

है। भूमि पर लम्बे चौड़े आच्छादन बिछे हैं। जिन पर समिति के सदस्य बैठे हुये हैं। सदस्य भिन्न-भिन्न ग्रामो, पुरो और विशायो के प्रतिनिधि हैं। ग्रामों के प्रतिनिधियों मे सुबाहु है। ईशान के मञ्च की दोनों ओर गद्दी वाली मञ्चिकाओं पर मेघ, कुछ ब्राह्मण, वणिक, पणि, श्रेष्ठी, महाशाल इत्यादि बैठे हैं। महाशालों में दीर्घबाहु भी है। समिति में कोलाहल हो रहा है। समय दिन का तीसरा पहर]

ईशान—सभापाल!

(एक कोने से सभापाल ईशान के निकट आता है)

ईशान—शांति स्थापित करो।

(सभापाल सदस्यो के कोलाहल को शान्त करता है)

ईशान—परमात्मा की प्रार्थना हो चुकी है। राजा के आने की बहुत प्रतीक्षा कर ली। कृत्याधिकरण का समारम्भ होना चाहिये।

सोम—सज्जनो! जब तक राजा न आ जावे समिति की कार्य-विधि का प्रारम्भ नही किया जा सकता। शास्त्र का नियम है।

मेघ—किस शास्त्र का?

दीर्घबाहु—मैं भी यही पूछता हूं।

सोम—स्मृति, शील और आचार का।

ईशान—जिस समिति को वेद ने राजा के चुनने का अधिकार दिया है, उसी ने इस मन्त्र मे राजा को निकाल देने का भी अधिकार दिया है जिसमें कहा गया है कि 'हम इसे नहीं चाहते, अभिषेक के समय दिया हुआ अपना समर्थन लौटाते हैं।'

सोम—राजा की उपस्थिति अनिवार्य है–ऐसे अवसर पर। परम्परा से चली आई है।

ईशान—आचार्य सोम, वेद के समक्ष परम्पराओं का कोई मूल्य नहीं। कई निमन्त्रकों को उनके पास भेज चुके हैं, परन्तु वे अभी तक नही आये! यदि परम्परा की लीक पीटने हेतु समिति का अधिवेशन स्थगित करते हैं तो फिर जब कभी अधिवेशन होगा इसी प्रकार स्थगित

करते जाना पड़ेगा। इसका अर्थ होगा धर्म का उल्लघन, और सबको व्यर्थ कष्ट।

दीर्घबाहु—इस प्रसङ्ग पर समिति का छन्द सग्रह कर लिया जाय।

(ईशान इधर उधर देखता है)

सोम—इसमे कोई हानि नही।

ईशान—सभापाल, सदस्यो के हा ना के छन्दो का सग्रह करो।

(सभापाल छन्द सग्रह मे लग जाता है। यह कार्य पूरा नहीं हो पाता कि रोमक अपने को अमात्यो सहित आ जाता है। सदस्य रोमक का खड़े होकर अभिवादन करते हैं। केवल मेघ, ईशान, सोम, और अन्य ब्राह्मण बैठे रहते हैं। रोमक अभिवादन का विनयपूर्वक उत्तर देकर ईशान के निकट मन्च पर बैठ जाता है)

ईशान—आपने बहुत विलम्ब कर दिया।

रोमक—कुल्यायें, सरोवर और कूप खोदने वाले कर्मकारों के भावी पारश्रमिक-प्रदान का आयोजन करने में लग गया था। क्षमा करें मुझे सब लोग।

ईशान—(जनरव को शान्त करने के लिये) शान्त।

(शान्ति हो जाती है)

ईशान—अब सब एक मन होकर कहो—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

(सब एक साथ दुहराते हैं) और कहो 'यतेमहि स्वराज्ये।' हम स्वराज्य के लिये सदा प्रयत्नशील रहें। (सब एक साथ दुहराते हैं)

ईशान—(शान्ति स्थापित होने के उपरान्त सोम के प्रति और फिर सदस्यो की ओर देखते हुये) अब कार्य विधि का आरम्भ किया जावे।

मेघ—आर्य ईशान और सज्जनो, जब समिति राजा का चुनाव करती है तब अभिषेक के समय उससे वचन लेती है कि मन वचन और काया से वह जनपद की सेवा करेगा और वह कहता है कि यदि जनता दुखी हुई तो वह मेरे पापों का फल समझा जावेगा। कर्मकार और वैश्य कृषक से लेकर महाशाल और श्रेष्ठी, पणि इत्यादि सभी दुखी हैं। दुर्भिक्ष पड़ते पड़ते छ वर्ष हो गये। किसके पापो का परिणाम है? मैं स्पष्ट कहता हूँ कि राजा रोमक के पापो का—

रोमक—कौन कौन से पाप, आचार्य ?

मेघ—उनका गिनाना मेरा काम नही है, दुखी जनता के ये प्रतिनिधि गिनायेंगे।

सुबाहु—(तुरन्त खड़ा होकर) लोहे, कासे, त्रपु, ताम्बे, स्वर्ण, रजत इत्यादि खदानो की आय का आधा राजा लेता ही रहता है, कृषि पर कर बहुत बढ़ा दिया गया है, कोर्वी और विष्टि से कोई नहीं बच पाता। कुल्या, सरोवर, कूप इत्यादि खुदवाने की आड मे राजा अपने खेतो पर भी पाव आधा ही पारश्रमिक देकर काम कराता है। भूखो मरे जा रहे हैं। हमारे शरीर दुर्बल हो गये हैं। सौ वर्ष सशक्त जीवित रहने की हमारी कामना झूठी पड़नी चाहती है। अन्न वस्त्र दुर्लभ हैं। हम ऐसा राजा नहीं चाहते।

(बैठ जाता है)

कर्मकारो का प्रतिनिधि—(खड़े होकर) पहले हमे श्रम के परिवर्तन मे, जो जैसा काम करे उसके अनुसार, एक पण से लेकर छ पण तक प्रति दिन मिलता था। अब पाव पण से एक पण तक की दर हो गई है। हम सब त्रस्त हैं (बैठ जाता है)

दीर्घबाहु—महाशालो के हाथ लाख लाख निवर्तन तक भूमि थी। राजा ने जुये में अधिकाश भूमि जीत कर सग्रह करली है।

रोमक—बहुत अशिष्ट हो। खड़े तक नहीं हुये! अस्तु। मैं तो कभी कभी ही खेलता हूँ तुम अवश्य सदा उसी मे डूबे रहते हो।

करते जाना पडेगा। इसका अर्थ होगा धर्म का उल्लघन, और सबको व्यर्थ कष्ट।

दीर्घबाहु—इस प्रसङ्ग पर समिति का छन्द सग्रह कर लिया जाय।

(ईशान इधर उधर देखता है)

सोम—इसमे कोई हानि नही।

ईशान—सभापाल, सदस्यो के हा ना के छन्दो का सग्रह करो।

(सभापाल छन्द सग्रह मे लग जाता है। यह कार्य पूरा नहीं हो पाता कि रोमक अपने को अमात्यो सहित आ जाता है। सदस्य रोमक का खडे होकर अभिवादन करते हैं। केवल मेघ, ईशान, सोम, और अन्य ब्राह्मण बैठे रहते हैं। रोमक अभिवादन का विनयपूर्वक उत्तर देकर ईशान के निकट मन्च पर बैठ जाता है)

ईशान—आपने बहुत विलम्ब कर दिया।

रोमक—कुल्यायें, सरोवर और कूप खोदने वाले कर्मकारों के भावी पारश्रमिक-प्रदान का आयोजन करने में लग गया था। क्षमा करें मुझे सब लोग।

ईशान—(जनरव को शान्त करने के लिये) शान्त।

(शान्ति हो जाती है)

ईशान—अब सब एक मन होकर कहो—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

(सब एक साथ दुहराते हैं) और कहो 'यतेमहि स्वराज्ये।' हम स्वराज्य के लिये सदा प्रयत्नशील रहें। (सब एक साथ दुहराते हैं)

ईशान—(शान्ति स्थापित होने के उपरान्त सोम के प्रति और फिर सदस्यो की ओर देखते हुये) अब कार्य विधि का आरम्भ किया जावे।

मेघ—आर्य ईशान और सज्जनो, जब समिति राजा का चुनाव करती है तब अभिषेक के समय उससे वचन लेती है कि मन वचन और काया से वह जनपद की सेवा करेगा और वह कहता है कि यदि जनता दुखी हुई तो वह मेरे पापों का फल समझा जावेगा। कर्मकार और वैश्य कृषक से लेकर महाशाल और श्रेष्ठी, पणि इत्यादि सभी दुखी हैं। दुर्भिक्ष पडते पडते छ वर्ष हो गये। किसके पापो का परिणाम है? मैं स्पष्ट कहता हूं कि राजा रोमक के पापों का—

रोमक—कौन कौन से पाप, आचार्य?

मेघ—उनका गिनाना मेरा काम नही है, दु.खी जनता के ये प्रतिनिधि गिनायेंगे।

सुबाहु—(तुरन्त खडा होकर) लोहे, कासे, त्रपु, ताम्बे, स्वर्ण, रजत इत्यादि खदानो की आय का आधा राजा लेता ही रहता है, कृषि पर कर बहुत बढा दिया गया है, कोर्वी और विष्टि से कोई नहीं बच पाता। कुल्या, सरोवर, कूप इत्यादि खुदवाने की आड मे राजा अपने खेतो पर भी पाव आधा ही पारश्रमिक देकर काम कराता है। भूखो मरे जा रहे हैं। हमारे शरीर दुर्बल हो गये हैं। सौ वर्ष सशक्त जीवित रहने की हमारी कामना झूठी पडनी चाहती है। अन्न वस्त्र दुर्लभ हैं। हम ऐसा राजा नहीं चाहते।

(बैठ जाता है)

कर्मकारों का प्रतिनिधि—(खडे होकर) पहले हमें श्रम के परिवर्तन में, जो जैसा काम करे उसके अनुसार, एक पण से लेकर छ. पण तक प्रति दिन मिलता था। अब पाव पण से एक पण तक की दर हो गई है। हम सब त्रस्त हैं (बैठ जाता है)

दीर्घबाहु—महाशालो के हाथ लाख लाख निवर्तन तक भूमि थी। राजा ने जुये मे अधिकाश भूमि जीत कर सग्रह करली है।

रोमक—बहुत अशिष्ट हो। खडे तक नहीं हुये। अस्तु। मैं तो कभी कभी ही खेलता हूं तुम अवश्य सदा उसी मे डूबे रहते हो।

ईशान – मनु महाराज ने जुये को निषिद्ध किया है।

रोमक—आगे कभी नही खेलूंगा।

दीर्घबाहु—और मेरी जीती हुई भूमि ?

रोमक—जहा है वही बनी रहेगी चाहे हम तुम कहीं के कही हो जायें।

(कुछ लोग हँस पडते हैं)

एक वणिक—छोटी-छोटी पणशाला वाले वणिक लगभग मिट गये हैं और दण्डिक चाहे जिसको पीडा पहुचाने लगे हैं। उस दिन प्रदर्शन करने वाली भीड पर दण्डिक यो ही टूट पडे थे।

नीलपणि—दासों को छूट-सी मिल गई है। जब चाहे जहा भाग जाते हैं।

रोमक—मैं किसी को भी दासता में नही देख सकता। यदि यह दृष्टिकोण पापपूर्ण है तो मैं अपराधी हूं। परन्तु पापपूर्ण है नही।

मेघ—परन्तु दास शूद्रो को तपस्या करने का अधिकार किसने दिया ?

रोमक—मैं नही जानता।

कर्मारों का प्रतिनिधि—(खडे होकर) हमारा राजा शीलवान और सदाचारी है। उसको पदपतित नही करना चाहिये।

(बैठ जाता है)

मेघ—हम सब का राजा ! जब अभिषेक हुआ हमने और पुरोहित ने समिति से कहा था—हे जनगण यह तुम्हारा राजा है, परन्तु हमारा राजा वर्चस्व है, यह नही। राजा सब का अधिपति हो सकता है, परन्तु ब्राह्मणो का नही हो सकता।

सोम—यह सिद्धान्त शास्त्र के अनुसार है।

(सभासद सोम की इस सम्मति से प्रभावित होकर हामी का सिर हिलाते हैं)

मेघ—ब्राह्मण का जो अपमान राजा ने किया और जो दुर्वचन इनके लाडले सपूत ललित ने सभा में कहे थे वे समिति के ईशान को विदित हैं। (ईशान की ओर देखता है)

ईशान—ललित ने आचार्य मेघ को पाखण्डी, कुकर्मी इत्यादि बतलाया था।

मेघ—इत्यादि नहीं आर्य, उसने विडाल तपस्वी, वकवृत्ति और ठग कहा था ! कहा था ऐसे ब्राह्मण को पानी भी न दे !!

सोम—उसने मनु महाराज के वाक्य को उद्धृत भर किया।

मेघ—मेरे लिये न ? मेरी पीठ पीछे कहा अन्यथा उसे तुरन्त वहीं दण्ड देता। मनु का वह वाक्य किसने सिखलाया ललित को ? राजा के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता—अथवा उसकी माता ने सिखलाया होगा।

(सुवाहु की ओर देखता है)

सुवाहु—(खडे होकर) ब्राह्मण का अपमान घोर पातक है देव।

ईशान—शास्त्रीय प्रसङ्गों पर कृपकों की सम्मति नहीं ली जाती। बैठ जाओ।

मेघ—उसको कुछ और भी कहना है।

सुवाहु – राजकुमार ने आखेट खेलते समय कुछ ग्रामीणों को मार डाला होता, जो विना कुछ लिये ही जङ्गली पशुओं का हांका करने आये थे। एक के ऊपर तो उसने वाण ही छोड दिया होता। फिर इन्हीं हाके वालो ने राजकुमार के प्राण वचाये जब एक बडा दन्तधारी शूकर उसे मार डालने वाला था।

(बैठ जाता है)

सोम—मैंने सुना है कि किसी तपस्वी शूद्र ने ललितविक्रम के प्राण वचाये थे।

मेघ—शूद्र तपस्वी और योगी ! न जाने रोमक के राज्य में और क्या क्या अनर्थ होने वाले हैं !!

कर्मकारों का प्रतिनिधि—(खड़े होकर) हमको यदि पूरा पारश्रमिक मिले तो अन्य प्रसङ्गों से हमे कोई प्रयोजन नही।

(बैठ जाता है)

नीलपरिण—(खड़े होकर) वैसे हमे राजा रोमक के राज्य मे कोई विशेष कष्ट नही—व्यापक जनता को जो सार्वभौम क्लेश है उससे तो कोई भी नहीं बचा है, परन्तु दासो के भगाने का प्रोत्साहन उऋण होने की आर्य-परम्परा के प्रतिकूल है। यह हमे खलता है। राजा से निवेदन है कि इस प्रोत्साहन का परित्याग कर दें तो सबके लिये अच्छा होगा। (बैठ जाता है)

रोमक—कभी नही। आर्यावर्त मे दास कोई भी नही होगा।

(नीलपरिण मुंह विगाड़ कर रह जाता है)

सोम—दास तो कई प्रकार के हैं ऋण से मुक्त न होने वाले ब्राह्मण तक दास हो जाते हैं, परन्तु उनके साथ ऋणदाता कभी दुर्व्यहार नही कर सकता। आप तो दास की हड्डी तोड़ने तक के लिये आतुर हो जाते हैं।

ईशान—आर्य, इस समय यह प्रसङ्ग विचाराधीन नहीं है। जनपद के नाना प्रकार के दुखो का कारण क्या और कौन है, यह प्रश्न समिति के सामने है। अब मैं राजा से अनुरोध करूंगा कि उन्हें जो कुछ कहना हो कहें।

रोमक—(खड़े होकर) ईशान और सज्जनो, मैं क्या कहू क्या न कहू, इस द्विविधा मे हूँ। मैं जब आपकी बात सुनता हू तब लगता है जैसे मैंने अवश्य कोई पाप किये हैं, परन्तु जब भीतर की ओर उन्मुख होकर देखता हूँ तब अवगत होता है कि आपके कष्ट किसी दैवी क्रिया के परिणाम हैं, मेरे किसी दुष्कृत के फल नही। परमात्मा सूर्य रूप से तपते हैं, वर्षा का आकर्षण करते हैं और उसे बरसाते हैं। इतने दिनो मे तप रहे हैं परन्तु वर्षा नही कर रहे हैं यह वे ही जानें। जन-कल्याण के लिये जो कुछ हो सकता है किया जा रहा है। (कुछ लोग नाहीं का

सिर हिलाते हैं) कुल्यायें इत्यादि खुदवाने के लिये मैं अपनी गाँठ की सम्पत्ति व्यय कर रहा हूँ—

ईशान—वह आपकी नही है, जनपद की है।

रोमक—मेरे क्षेत्रों के निवर्तन, मणि-मुक्ता, स्वर्णादि तो मेरे हैं, आर्य। जनहित के लिये सब कुछ कर रहा हूँ। पानी न बरसने पर मेरा कोई वश नहीं। कर्मकारों का वेतन कम हो गया है और मँहगाई बहुत है इसमे कोई सन्देह नही। परन्तु इन सब का कारण आर्थिक है न कि राजकीय।

मेघ—दोनो मे अभिन्न सम्बन्ध है।

रोमक—(कुढकर) मुझे तो नहीं दिखलाई पडता। रह गई आचार्य मेघ के अपमान की बात, सो मैंने कभी नहीं किया। सत्यवाद कोई भी अपराध नही फिर चाहे वह किसी आचार्य के विरुद्ध जा कर क्यो न पडे। इसका इन्हें बुरा नहीं मानना चाहिये।

ईशान—तो आप ललितविक्रम द्वारा व्यवहृत किये गये वचन का समर्थन करते हैं ?

सोम—समर्थन तो नही कर रहे हैं।

रोमक—सत्य बोलना कोई पाप नहीं। कहा है कि ऋतु, सत्य के ही सहारे मनुष्य स्वर्ग को पाता है, और, यह भी कहा है कि वेद और वेदाङ्ग, सद्गुण-शून्य मनुष्य का वैसे ही त्याग कर देते हैं जैसे चिडियो के बच्चे पख हो जाने पर नीड छोडकर उड जाते हैं। अहकार और क्रोध को, दूसरों के बहकाने फुसलाने और एक दूसरे में कलह और भण्डरण कराने को पाप कहा है। आचार्य मेघ से पूछिये कि वे किस किस दोष से बचे हैं ?

मेघ—(व्यङ्ग की हँसी में) प्रश्न मेरे पदपतित किये जाने का नही है।

रोमक—राजकुमार ललित ने जो कुछ कहा हो या न कहा हो, जो कुछ किया हो अथवा न किया हो अब वह महर्षि धौम्य के आश्रम मे चला गया है।

एक ब्राह्मण—परन्तु उसके किये का भोग तो भोगना ही पडेगा। क्या उसने किसी ग्रामीण के शिरोच्छेद का प्रयत्न किया था ?

रोमक—सुना है कि कहा भर था, परन्तु शिरोच्छेद का प्रयत्न तो नहीं किया।

वही ब्राह्मण—और क्या कोई शूद्र अयोध्या जनपद में तपस्या अथवा योग साधन कर रहा है ?

रोमक—मैं नही जानता।

मेघ—पुरोहित सोम ने इसी समिति मे थोडे समय पूर्व कहा था कि किसी शूद्र तपस्वी या योगी ने ललित की प्राणरक्षा की थी।

दूसरा ब्राह्मण—शूद्र भी तपस्या कर सकता है, यहा तक कि वह ब्राह्मण भी हो सकता है।

ईशान—किसी काल मे होता होगा, वर्तमान युग मे तो नहीं हो सकता।

रोमक—मैं नही मानता इसे।

ईशान—नही मानते तो पाप करते हो, आर्य। जनपद मे यात्रा करो और बहुश्रुत लोगो से पूछो कि यह पाप है अथवा नही और यह भी पूछो कि आप पापी हैं या नहीं।

रोमक—(क्रुद्ध स्वर मे) हूँ। हूँ।।

(समिति मे रौरा मचता है। सभापाल शान्ति स्थापित करता है)

सोम—ईशान, मेरी सम्मति है कि अब सभासदो का छन्द संग्रह कर लिया जावे। हमारी सभा ने एक उद्वाहिका नियुक्त की थी। उसने बहुमत से अनुरोध किया है कि राजा को पदपतित न किया जावे प्रत्युत उन्हें जनपद के कल्याण का अवसर दिया जावे।

ईशान—सज्जनो, आपको राजा के बनाये रखने और पदपतित करने के अधिकार के साथ एक अन्य अधिकार भी है। आप राजा को एक बार पदपतित करके पुन राज्य दे सकते हैं। यदि आपको नरिष्ठा यह हुई तो राजा अपने पाप का कुछ काल में अनुसन्धान करके मार्जन कर लेंगे, वर्षा होगी सुकाल आयगा और आप उनको फिर राज्यासीन कर देंगे।

मेघ—छन्दसग्रह कर लिया जाय ईशान।

सोम—हां, बातें तो बहुत हो चुकी हैं।

ईशान—जो सदस्य इस मत के हो कि राजा को अपदस्थ कर दिया जाय वे लाल रग की शलाकायें छन्दसग्रहक को दें। जो इस विचार के हों कि राजा को बना रहने दिया जावे वे दूसरे छन्द संग्रहक को हरे रग की दें और जिनकी सम्मति यह हो कि राजा को उतने समय तक के ही लिये राजपद से हटाया जाय जब तक कि उन्होंने अपने पाप का अनुसन्धान करके मार्जन नहीं किया वे पीले रग की शलाकायें तीसरे छन्दसग्रहक को दें। सबको तीनो रङ्गो की शलाकायें दे दी जायेंगी। अन्त में मैं सब से कहूँगा—मित्रो एक मन के होकर चलो।

(तीनो रगों की शलाकायें प्रत्येक सभासद के हाथ में दी जाती हैं। इसके उपरान्त सदस्य अपने अपने मत के अनुसार शलाकायें तीनो सग्रहको को अलग अलग दे देते हैं। शलाकाओं को ईशान भिन्न भिन्न रगो के अनुसार तीन राशियों मे रखकर गिनता है। परिणाम सुनने के लिये सदस्य उत्सुक हैं। सन्नाटा छा जाता है)

ईशान—(गणना करने के उपरान्त) पीले रग की शलाकायें अधिक हैं। (कुछ क्षण ठहरता है। राजा पीला सा पड़ जाता है। सोम भी अधीर है। राजा के अमात्य व्याकुल हो जाते हैं। कुछ सदस्य दुखी हैं) इसलिये राजा रोमक को समिति उतने समय तक के लिये अपदस्थ करती है जितने समय तक वे अपने पाप का अनुसन्धान करके मार्जन न करें।

रोमक—(कम्पित स्वर मे) मुझे समिति का आदेश शिरोधार्य है। मैं अब जाता हू। जो कुछ कहा गया उसके अनुसार विचरण और अनुसन्धान करूगा। मन मे यह दुख अवश्य उत्पात कर रहा है कि जिस जनता के लिये इतना सब किया उसने मेरे साथ न्याय नही किया। मुझे तो लग रहा है कि चकोर के अपलक जागरण को चन्द्रमा नहीं देखता, विकसित पुष्प धरती पर न्योछावर होने के लिये जब डाल से टूटता है तब धरती उसे मुर्झाने ही के लिये विवश करती है, नदी वर्षा के जल का आदर न करके समुद्र की ओर बहा देती है, कृतज्ञता की अपेक्षा कृतघ्नता का पलड़ा भारी हो जाता है। (कण्ठ रुद्ध हो जाता है)

(जाने के लिये यकायक खड़ा हो जाता है)

ईशान—राजा के लौट आने तक राज्य सचालन की विधि क्या होगी, सज्जनो ?

सोम—(प्रखर स्वर में) यह पहले सोच लेना चाहिये था। अस्तु जो हुआ सो हुआ। अब तो राजा के वर्तमान अमात्यो के हाथ मे शासन रहने देना चाहिये। अमात्य सभा की ओर मेरी सम्मति के अनुसार काम चलाते रहेंगे। परम्परा यही है।

(अधिकाश सभासद चिल्लाते हैं—'ठीक है। ठीक है।')

ईशान—तथास्तु।

सोम—और तब तक राजा रोमक को राजभवन मे निवास करने का अधिकार रहना चहिये।

अनेक कण्ठों से—ठीक है।

(लोग खड़े हो जाते हैं। राजा के निकट आकर उससे कुछ कहना चाहते हैं)

ईशान—अब समिति का अधिवेशन विसर्जित किया जाता है। शान्ति के साथ सब जन अपने अपने घर जायें।

(राजा शीघ्रता के साथ चला जाता है। अन्य जन भी कोई धीरे कोई उतावले होकर जाते हैं)

पांचवां दृश्य

[अयोध्या का एक निकटवर्ती क्षेत्र जहाँ थोडे से वृक्ष हैं। ये सरयू नदी के किनारे हैं। सरयू की धारा क्षीण है। समय प्रात काल। प्रकाश अभी कम है]

(नेपथ्य से) रोमक का स्वर—हे वरुण! हे अन्तरिक्ष और पृथ्वी के स्वामी! आप सब के भले बुरे कृत्यो को देखते हैं। बतलाइये मैंने कौन सा पाप किया जिसका यह दण्ड मुझे दिया गया? न दिन मे शाति और न रात मे, इसी चिन्ता मे चिरन्तन पडा रहता हूँ कि मेरा गया गौरव फिर से कैसे प्राप्त हो और, वह गया ही क्यो?

दूसरा कण्ठ स्वर—तुम्हारे अनेक पाप हैं। सबसे बडा है दासो को मुक्ति दिलाने का प्रयत्न और तुम्हारे राज्य में शूद्रों की तपस्या करना, योग साधना'''महापुरुषों का अपमान तो है ही।

रोमक का आश्चर्यान्वित्त और कम्पित्त स्वर—यह कौन बोला! क्या आचार्य मेघ? (कडे स्वर मे) यह छलना भी!!

दूसरा वही स्वर—मैं आकाश से बोल रहा हू जिसको तुमने अन्तरिक्ष और पृथ्वी का स्वामी सम्बोधन किया था। अपने अन्यजन से ये ही प्रश्न करो। मैं अब नहीं बोलूंगा।

(कुछ क्षण के लिये स्तब्धता)

रोमक का कण्ठ स्वर—बहुत टटोला, परन्तु यहा मेघ या कोई भी तो नही है। अन्यत्र देखूँ।

(रोमक का प्रवेश)

रोमक—(हाथ जोड कर ऊपर की ओर कातर स्वर में) हे इन्द्र, हे वरुण, मेरी रक्षा करो। क्या आपको मेरी व्यथा नहीं दिखलाई पडती है? आप अलक्ष्य होते हुये भी सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व को भी देख लेते हैं। मेरे पूर्व पुरुषों ने, मैंने, और मेरी सन्तान ने जो पाप जान या अनजान में किये हों, उन्हें क्षमा कर दो। आप अपने प्रिय वत्सों को कैसे पीडित

बहुत बडो ने कहा है कि परमात्मा का भक्त शूद्र परमगति को प्राप्त करता है, यहाँ तक कि नीतिवान हरिभक्त चाण्डाल भी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ द्विज से भी बढ़कर है। कपिञ्जल तो फिर योगी और मेरा प्राणदाता भी है।

रोमक—(बैठे हुये स्वर मे) महर्षि धौम्य की व्यवस्था तो है।

ललित—(अधिक दृढ़ स्वर मे) आपके विवेक और आत्मा की व्यवस्था है या नही, पिता जी ? गुरुदेव ने—(यकायक रुक जाता है)

(रोमक अपना माथा पकडकर बैठ जाता है)

रोमक—(टूटते हुये स्वर मे) समझ मे नही आता कि क्या करू ।

ललित—(झुककर) आत्मा और विवेक की गहराई में बैठकर सोचिये। गुरुदेव ने कहा था न ?

(कुछ समय तक दोनो चुप रहते हैं। ललित आकाश की ओर आंख उठाये प्रार्थना सी करता है। रोमक यकायक उठ खडा होता है)

रोमक—(खड्ग को फेककर) मैं कपिञ्जल या किसी का भी वध नहीं करूंगा, एक रोम तक नही काटूगा। सब कुछ छोडता हू, परन्तु तुम्हारे द्वारा जगाये हुये विवेक को कभी नहीं छोड़ूंगा।

(ललित उसका चरण स्पर्श करके हाथ जोडकर खडा हो जाता है)

ललित—तो अब आश्रम को लौट चलिये।

रोमक—नहीं वत्स, अपने कुत्सित सङ्कल्प का कुछ प्रायश्चित यहीं करना पडेगा। मुझे समाधिस्थ कपिञ्जल के स्थान पर ले चलो। उसका दर्शन करूंगा और फिर आश्रम को लौट चलूगा।

ललित—(हर्ष के साथ) चलिये पिताजी। गुरुदेव ने एक दिन यह भी कहा था कि सत्य के पथ पर सदा चलो।

(दोनों जाते हैं। आगे आगे ललित)

छठवां दृश्य

[नैमिषारण्य का एक सघन भाग। इस भाग की एक ऊंची टेकडी पर वृक्ष समूह के नीचे कपिञ्जल ध्यान लगाये समाधिस्थ है, सूर्य क्षितिज में थोडा और ऊपर चढ आया है। रश्मिया कपिञ्जल के मुख के आधे भाग को आलोकित कर रही है। शेष आधे पर भी उस आलोक की झाई पड रही है। माथे पर चमक और भी अधिक है। उसकी कुटी निकट ही पार्श्व में है। कुटी की ओट मे आरुणि, वेद और कुल्लक छिपे हुये हैं। जहां से पगडण्डियां आकर टेकडी के नीचे एक हो गई हैं वहा से वे नहीं दिखलाई पडते। जिस स्थान पर वे छिपे हुये सन्नद्ध बैठे हैं उसके पीछे एक छोटी सी घनी झाडी है। कपिञ्जल जिस वृक्ष समूह के नीचे है उस पर बैठीं छोटी छोटी चिडियों की चहक सुनाई पड रही है। एक पगडण्डी पर से आगे ललित और पीछे रोमक आते हैं। ललित नमस्कार करके हाथ के सकेत से कपिञ्जल को बतलाता है। ललित हर्ष मग्न है। रोमक टकटकी लगाकर कपिञ्जल की मुद्रा को देखता है। फिर आखें मूंद कर कुछ सोचता है और फरेरु आने के कारण थिरक जाता है। आखें खोलकर फिर टकटकी लगाता है। एक दो क्षण पीछे ही उसकी आंखो में आसू आ जाते हैं जिन्हे वह बहुत धीरे से पोछ डालता है। कपिञ्जल को चुपचाप नतमस्तक प्रणाम करता है। फिर मस्तक ऊँचा करके ऊपर की ओर हाथ जोडता है]

रोमक—(घुटने टेककर कम्पित स्वर में जिसका साथ आख के आसू देते हैं) परमात्मा, मुझ गिरे हुये को पुन ऊपर चढाओ !

ललित—(धीरे से) पिता जी—

रोमक—(ललित की अनसुनी करके, वैसे ही) और मेरे मन को कल्याणकारी सकल्प वाला कर दो ।।

ललित—(रोमक के कन्धे को धीरे से हिलाकर) पिताजी ऐसा शब्द न कहिये जिससे उनका ध्यान भङ्ग हो जावे।

(रोमक कुछ क्षण उसी स्थिति में चुपचाप रहता है; फिर खड़ा हो जाता है और कपिञ्जल की ओर देखने लगता है)

ललित—(बहुत धीरे से) पिता जी, चलिये।

रोमक—(भटकती हुई स्मृति से) कहा ? (ललित की ओर देखता है)

ललित—(वैसे ही) आश्रम मे। गुरुदेव प्रतीक्षा कर रहे होगे।

रोमक—हूं।

ललित—(हाथ जोड कर आग्रह के स्वर मे) पिता जी चलिये।

रोमक—(जैसे अनिश्चय मे हो) अच्छा। बहुत थक गया हू।

(ललित चल पडता है तो उसके पीछे पीछे रोमक भी जाता है। रोमक जाते जाते कपिञ्जल की ओर मुडकर देखता है)

सातवां दृश्य

[नैमिषारण्य का दूसरा भाग। यह भी सघन है। समय दिन का पहला पहर। पूर्वी क्षितिज पर बदली छाई है और सूर्य को झीना झीना ढक रही है। इस कारण धूप मे उतना तीखा उजेला नही है। एक दिशा से ललित और रोमक आते हैं। ललित की आकृति पर हर्ष के स्पष्ट चिन्ह अंकित हैं। रोमक का वक्ष तना हुआ और सिर ऊँचा है। मुख पर

रोमक—अब मुझे इसकी भी चिन्ता नही कि तुम्हारी माता जी क्या कहेंगी।

ललित—उनकी बुद्धि प्रखर और आत्मा सजग है।

रोमक—उन्ही के अनुरोध पर मैं ऋषि धौम्य की व्यवस्था लेने आया था। अस्तु, अब जो हो। सब प्रकार की कठिनाइयो के सामना करने के लिये उद्यत हू।

(एक ओर से धौम्य का प्रवेश जैसे वृक्षो की एक झुरमुट के पीछे से यकायक निकल पडे हों। रोमक नतमस्तक नमस्कार करता है। ललित भी प्रणाम करके रोमक के पीछे खडा हो जाता है। वह अपने हर्ष को धौम्य से नहीं छिपा पाता)

धौम्य—(रोमक से) आर्य, आप अपना काम कर आये ?

रोमक—नही देव, मैंने नही किया और न कर सकूगा।

धौम्य—फिर ? अब क्या होगा ?

रोमक—मैं उस दुष्कर्म को नहीं कर सकता देव, भले ही अयोध्या का राजपद सदा सर्वदा के लिये त्यागना पडे। मैंने दृढ सकल्प कर लिया है। हम पिता पुत्र खेती कर खायेंगे।

धौम्य—खड्ग कहा डाल आये ?

रोमक—मेरे उस जघन्य विचार के कारण वह खड्ग कलकित हो गया था इसलिये उसे अरण्य की देवी के चरणो में पवित्र होने के लिये डाल आया हूँ।

धौम्य—अब राज्य कैसे पाओगे ?

रोमक—न मिले। छोडा मैंने। अपनी आत्मा के भीतर इस समय जो कुछ पा रहा हू वह ससार भर का राज्य पाने पर भी नहीं मिल सकता था।

धौम्य—(हँसते हुये, रोमक के सिर पर हाथ फेरकर) आर्य आप परीक्षा मे उत्तीर्ण हो गये। मेरी व्यवस्था आपकी परीक्षा के विधान का अग थी।

रोमक—(सहसा धौम्य के चरणो मे नमस्कार करके) यह क्या मेरा कोई मतिभ्रम है महर्षि ?

धौम्य—नहीं है आर्य। आप चाहते भी तो कपिञ्जल का वध करने में असमर्थ रहते। मैं वहा निकट ही था और कपिञ्जल के पीछे मेरे वे दोनो शिष्य उसकी रक्षा के लिये सन्नद्ध छिपे बैठे थे।

रोमक—(हर्षातिरेक मे अभिमान के साथ) और यह ललित भी क्या इसी हेतु मेरे साथ लगाया गया था, देव ? आपका दिया हुआ इसका विवेक बहुत जाग्रत हो गया है—

धौम्य—ललित ने अपने यथार्थ को सत्य की पदवी पर पहुचा दिया है। जैसे प्रकृति के साहित्य की भाषा का सौन्दर्य रगो और रेखाओं की भिन्नता तथा उनके ठीक ठीक अनुपात में है उसी प्रकार यथार्थ का सुन्दर रूप उसी समय सत्य का नाम पाने के योग्य होता है जब वह कल्याण करने की वृत्ति दृढ़ता के साथ धारण करले। ललित को जो कुछ भी मैं सिखलाता आया हू वह उसने आत्मसात कर लिया है। यह उसकी निज की प्रेरणा थी जिसके द्वारा उसने आपको जगाया—मैं तो निमित्त मात्र हू।

ललित—(धौम्य के चरणों में पडकर) गुरुदेव !

धौम्य—(उसके सिर पर हाथ फेरते हुये) उठो वत्स। तुम्हारी परीक्षा समाप्त हो गई। (ललित हाथ जोडे खडा हो जाता है) इसी समय से तुम स्नातक हो गये। दीक्षान्त और समापवर्तन सस्कार आश्रम में चलकर करूँगा। (रोमक के आसू आ जाते हैं) आर्य, आपका गया गौरव आपको फिर मिलेगा।

रोमक—(गद्‌गद् कण्ठ से) परन्तु देव मेरे पाप ! समिति का निर्णय !!

धौम्य – आपके पाप हैं, परन्तु शूद्रो का तपस्या करना अथवा मेघ का कथित अपमान ये नही हैं। आश्रम चलिये। उपयुक्त अवसर पर वतलाऊंगा।

(एक ओर के वृक्षो की ओर देखते हुये) आरुणि ! (आरुणि एक वृक्ष की आड से निकलकर आता है) तुम राजा का खड्ग ढूंढ़कर ले आओ और कल अयोध्या जाकर सभापति सोम और समिति के ईशान को लिवा लाओ।

आरुणि—जो आज्ञा। (जाता है)

धौम्य—आरुणि कर्मशील ज्ञानी है। राजन् तुम भी बनो। (ललित से) तुम आगे हो जाओ। मैं इनसे बात करता चलूंगा।

(ललित आगे चलता है उसके पीछे धौम्य और रोमक जाते हैं)

आठवां दृश्य

[एक गाव के बाहर का भाग जहा झाडी झङ्खाड हैं और सघन वन थोडी सी दूरी पर है। समय सन्ध्या का। बादल छाये हुये हैं। अन्धेरा-सा हो रहा है, बिजली कौंध रही है। नेपथ्य मे रथो के आने और रुकने का रव होता है। सोम, समिति का ईशान, ममता और दो अमात्य आते हैं। ममता आभूषण नही पहिने है और न बहुमूल्य वस्त्र। नगे पाव है। अन्य लोग उपानह पहिने हैं]

सोम—यहा भी वर्षा हुई है। सूखे पेडों की डाल-डाल मे फुनगियां फूट निकली हैं।

समिति का ईशान—अयोध्या में जितना पानी बरसा है उतना यहा नहीं।

एक अमात्य—यहा भी बादल छाये हुये हैं। बिजली चमक रही है। पानी अभी तो नहीं, पर हां आधी रात तक मूसलाधार बरसेगा, ऐसा जान पडता है।

दूसरा अमात्य—बारह वर्ष उपरान्त देखने को मिला यह सब।

ममता—और आगे भी मिलता रहेगा। मुझे ऐसी आशा है।

सोम—देवी! गाव निकट आ गया है। उजडा हुआ-सा होने पर भी कुछ जन इसमें अवश्य होंगे।

ममता—मैं जब महाराज के साथ आई तब थोडे से नरनारी तो थे।

सोम—देवी, हम लोग आपको गाँव मे ठहराने का प्रबन्ध करके या तो अभी धौम्य ऋषि के आश्रम को चल देंगे, और यदि वर्षा की सम्भावना हुई तो रात्रि मे प्रवास करके प्रात काल उठ जायेंगे। आप

तव तक यहीं विश्राम करें। हम लोग महाराज और राजकुमार को लेकर गाव मे शीघ्र आ जायेंगे।

ममता—मैं साथ ही चलूगी आर्य।

सोम—मार्ग बहुत कठिन है। रथ नहीं जा सकता। नगे पाव पैदल चलना पडेगा। मान जाइये।

ममता—आर्य, स्त्री जब युद्ध मे जा सकती है तो ऋषि के आश्रम मे अपने पति और पुत्र के पास क्यो नही जा सकती? मैं अवश्य चलूगी। महर्षि धौम्य के दर्शन मैंने अध्ययन काल में किये थे। एक युग-सा बीत गया। यहां तक आकर अब उनके दर्शनो से अपने को कैसे वचित कर सकूगी?

सोम—अच्छा चलिये।

(बिजली अधिक कौंधती है और बादलों के गरजने का शब्द होता है)

ईशान—बादल गरज रहा है, सम्भव है शीघ्र बरस उठे। गाव की ओर चलना चाहिये।

सोम—(हँसकर) गरजने वाले बरसते बहुत कम हैं। (ईशान इसमें व्यङ्ग की गन्ध पाकर उसकी ओर देखकर बादलों के प्रति आँखें फेर लेता है) परन्तु अब तो गाव मे ही सब के प्रवास का आयोजन करना चाहिये। प्रात काल हम सब आश्रम की ओर चल पडेंगे।

(सब गाव की ओर जाते हैं)

नवां दृश्य

[धौम्य ऋषि का आश्रम। समय दिन का तीसरा पहर। धौम्य एक ऊंचे मञ्च पर बिछी कुशासन पर बैठे हैं। नीचे मञ्चिकाओ पर बिछी कुशासनो पर रोमक, ममता, सोम, समिति का ईशान और रोमक के अमात्य बैठे हैं। भूमि पर कुशासन बिछाये आरुणि, ललित, वेद और

कुल्लक वैठे हैं। गाव के नर-नारी दूर खडे हैं। आकाश में छाये बादलों के कारण धूप नही है। सब के ऊपर सघन वृक्षो की छाया है। पानी नहीं बरस रहा है। ममता रोमक के पार्श्व में एक पोटली लिये वैठी है]

धौम्य—जानते हो आरुणि ने गई रात क्या किया ? मुझे सन्ध्या के कुछ पूर्व समाचार मिला कि आश्रम के एक खेत की बन्धी वर्षा का पानी भर जाने के कारण टूटने वाली है तो मैंने आरुणि से सम्भालने के लिये कहा। यह तुरन्त गया, परन्तु कई उपाय करने पर भी जब इसने देखा कि बन्धी टूटने से नही रुकती तब दरार पडे स्थल में जहां से पानी बहने लगा था अपने शरीर को अडा दिया और अडाये रहा। जब रात भर पता न लगा तो मैं प्रात काल खोजने के लिये गया। देखू तो यह बन्धी की दरार में अपने को अडाये पडा है। बन्धी टूटने से बच गई तब यह वहा से टला। आरुणि अब तुम भी स्नातक हुये। (आरुणि धौम्य का चरण स्पर्श करके अपने आसन पर वैठ जाता है। (वेद और कुल्लक से) तुम्हारे लिये अभी थोडा सा विलम्ब है।

(वेद और कुल्लक को बुरा नही लगता)

रोमक—गुरुदेव, मैंने सुना है कि कपिञ्जल भी आपके शिष्य हैं। वे तो अब स्नातक पद के पूर्ण अधिकारी हो गये होंगे।

धौम्य—(मुस्कराकर) अभी नहीं। योगाभ्यास करने के उपरान्त उसे कर्म-भूमि में आकर कर्तव्य-पालन करना होगा, तब स्नातक हो पायगा। योगी को कर्मठ तो होना ही चाहिये। अभी उसने वार्त्ताशास्त्र का अध्ययन नहीं कर पाया है। विना वार्त्ता-शास्त्र के ज्ञान के सब विज्ञान अधूरा रहता है।

रोमक—मेरे लिये क्या आज्ञा है, देव ? आपने कहा था कि उपयुक्त अवसर पर कुछ वतलायेंगे। आरुणि और ललित का दीक्षान्त और समावर्तन सस्कार है और जनपद के ये दो वडे प्रतिनिधि भी इस अवसर पर यहा हैं।

धौम्य—शासक के पाप हैं आलस्य, प्रमाद, अदूर-दर्शिता और द्विविधा मे पडकर ठीक निर्णय पर न पहुच पाना। कोर्वी और विष्टि के बन्द करने की ओर से आख चुराना, कृषि, शिल्प और वाणिज्य को भरपूर और सानुपात सहायता न देना, चोर, लुटेरो, अत्याचारियों, अधर्मियो से जनपद की रक्षा न करना, वृद्धिभोगियों से ऋणियों को न बचा पाना, लाखों निवर्तन भूमि का सग्रह करके अपने उपयोग मे लाना और उस प्राचीन सिद्धान्त की, जिसमें कहा गया है कि सैकडो हाथो से इकट्ठा करो तो सहस्रो से बाँट दो उपेक्षा करके दरिद्रो और निस्सहायों को न बाँटना, राजकोष को जनपद का न समझ कर अपना समझना ये भी पाप हैं। थोडे बहुत ये तुमने सब किये हैं और उनका दण्ड भी भुगत लिया है। अब जनपद की आर्थिक विषमताओ का ध्यानपूर्वक परीक्षण करो और उन्हे हटाओ। वार्त्ता-शास्त्र का यही सिद्धान्त है। उसका विधिवत प्रयोग करो। पापो का पूर्ण मार्जन इसी से होगा।

ईशान—देव, यथेष्ठ से भी अधिक वर्षा हो रही है इसलिये राजा के प्रति जन हृदय मे अब द्वेष नही रहा। मुझे विश्वास है कि समिति इन्हे फिर राज्य देगी परन्तु आचार्य मेघ के लिये क्या किया जाय ?

सोम—मेघ को आचार्य कहना व्यर्थ है। जो यह तक ठिकाने से नहीं जानता कि बाण को तीव्र और ठीक गति कैसे दी जाती है, वह आचार्य कैसे हो गया ? उसकी उपेक्षा करनी चाहिये। और अपना काम देखना चाहिये। मेघ के उपद्रवों का दण्ड यही है कि सिर तोड प्रयास करने पर भी वह असफल रहा। निरर्थक उपदेशो का मूल्य ही क्या ? जनता का एक जोडी कान मात्र ही न ? उन उपदेशो को इस कान मे डाला और उससे निकाल दिया।

ईशान—मैं चाहता था कि मेघ आज यहा होते। निमन्त्रण दिया था, पर नही साथ लगे, सम्भव है आश्रम कभी एकान्त मे आवें।

(सोम की ओर देखकर) क्योंकि यदि अनुभव हमारे पास न आ सकें तो हमें अनुभवों के पास जाना चाहिये।

धौम्य—मेघ आवे या न आवे, उससे कह देना कि क्रोध करने के पहले अपने विरोधी का दृष्टिकोण और कार्य समझने का प्रयत्न किया करे। और आकाशवाणी का छल-कपट कभी न करे। इनके अतिरिक्त और क्या कहूं? (सब हँसते हैं) अब आप सब विश्राम करें। विद्यार्थियों का अनाध्याय रहेगा। (ललित से) तुमने जब आश्रम में प्रवेश किया एक बहुमूल्य कुर्तक साथ लाये थे। वह सुरक्षित रक्खा है। कल साथ लेते जाना।

ममता—गुरुदेव, अब तो वह इसके शरीर पर बैठेगा भी नहीं। मैं नये बना लाई हू जो सम्भव है उपयुक्त बैठें। (पास मे रक्खी पोटली को सम्भालती है)

धौम्य—देवी, पुराने कुर्तक देखने मे अच्छे लगते हैं, परन्तु बढ़ी हुई देह के लिये ओछे पड जाते हैं। हाँ, यह अवश्य ठीक है कि उनकी पेशकारी मे लगे हुये स्वर्ण और रजत तार वर्तमान और भविष्य के काम मे आ सक्ते हैं। और जब तक, देह का ठीक ठीक माप न ले लिया जावे, नये कुर्तक भी ओछे या ढीले ही बैठेंगे। शास्त्रों के उपभोग के लिये भी यही सिद्धान्त लागू है।

ममता—(मुस्कराकर) मैं समझ गई गुरुदेव।

धौम्य—विवेक के साथ प्राचीन को जानो और समझो, वर्तमान को देखो और उसमे विचरण करो और भविष्य की आशा को प्रबल करो। (हँसकर) दीक्षान्त और समावर्तन संस्कार सम्बन्धी भाषण मेरा इतना ही है। अधिक कुछ नही कहना चाहता क्योंकि आचार्य सोम अभी अभी कह चुके हैं कि निरर्थक उपदेशों का मूल्य एक छोटी कान मात्र होता है। इस कान मे डाला और उससे निकाल दिया।

(सब हँस पडते हैं)

धौम्य—अब एक प्रार्थना। उसके उपरान्त हमारे ये गाँव वाले कुछ गायेंगे जैसा कि ऐसे अवसरो पर होता आया है। फिर उत्सव का विसर्जन। (सब ध्यान मग्न हो जाते हैं) परमात्मा की शक्तियाँ जनता के सुख, अभीष्ट आनन्द और तृप्ति के लिये प्राप्त हो। हे परमात्मन्, हममे वर्चस, तेज, बल और ओज बढ़ें, हमारा आत्म-सतुलन अडिग रहे।

(नेपथ्य से गाँव वालों का गान-वीणा, मृदङ्ग, नादी, बाँसुरी और झाँझ के साथ। विलम्बित लय से प्रारम्भ और मध्य लय में समाप्ति)

हम विविध सत्कर्म करते सौ बरस जीते रहे,
बल पराक्रम मे पगे सज्ञान रस पीते रहे।
फल फूल गोधन पूर्ण पृथ्वी सदा हरियाती रहे,
सुस्मित शरद सौ वर्ष फिर फिर सामने आती रहे,
स्वजन, गोधन, धान्य जन का कभी हीन न हो प्रभो,
नेत्र, कर्ण सशक्त, वाणी मन्जु, मानस प्रबल हो,
तल्लीन शिव सङ्कल्प मे जन सौ बरस रमते रहें,
हम विविध सत्कर्म करते सौ बरस जीते रहें।

(पटाक्षेप)

❋ समाप्त ❋